I-San-83-911148

Micro- Śālinātha.
fiche ⌊Rasamañjarī. Hindi & Sanskrit⌋
83/ Rasamañjarī : vaidyaka / Śālināthaviracita ;
61026 Mukhiyājī Raghunāthajī Śrīkṛṣṇalāla Mathurānivāsīkṛtabhāṣāṭīkāsahitā. -- Kalyāṇa : Gaṅgāvishṇu Śrīkṛshṇadāsajī, 1984 ⌊1927 or 1928⌋

8, 168 p.; 21 cm.

In Sanskrit; translation in Hindi.

(Verse work on the therapeutic uses of metals etc., according to the ayurvedic system in Indic medicine)

18Fe83 Fiche ARREARAGE BD LC-San-A-358

॥ श्रीः ॥

पंडितवर शालिनाथविरचित–

रसमंजरी.

(वैद्यक)

मुखियाजी रघुनाथजी श्रीकृष्णलाल

मथुरानिवासीकृत-

भाषाटीकासहिता।

जिसमें

अनेक रस निकालनेकी क्रियाएं स्पष्ट वर्णित हैं।

उसीको

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीने

अपने 'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' छापेखानेमें

छापकर प्रसिद्ध किया।

संवत् १९८४, शाके १८४९.

कल्याण–मुंबई.

प्रस्तावना ।

प्रकट हो कि, आयुर्वेदीय विद्याके ज्ञाता धन्वन्तरिजीने समस्त प्राणियोंके रुजानाशनार्थ अनेक ग्रन्थ रचना किये हैं परन्तु उनमें बहुधा रसक्रिया सूक्ष्म रही अत एव भिषग्वर वैद्यनाथात्मज पं० शालिनाथजीने अनेक आयुर्वेदीय ग्रंथोंका आश्रय लेकर दश अध्यायोंमें धात्वादिक तथा विषादिक शोधन मारण गुणागुण लक्षण और सर्वरसोंके बनाने तथा सर्वसेवोपरि खानेकी विधि समेत इस ग्रन्थकी रचना की. परन्तु ग्रंथ केवल संस्कृतमें होनेसे सर्व सामान्यके लाभदायक न हुआ अत एव हम कृष्णलालजीके द्वारा भाषानुवाद कराय स्वच्छतापूर्वक मुद्रित कर सज्जनोंके दृष्टिगोचर करते हैं आशा है कि, सामान्यवैद्यभी इसके द्वारा प्रत्येक रस बनानेमें कुशल होजायँगे ।

आपका कृपाभिलाषी–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास.

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, कल्याण-मुम्बई.

॥ श्री ॥

अथ रसमञ्जर्या अनुक्रमणिका ।

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।



॥ श्रीः ॥

परमात्मने नमः ।

अथ रसमंजरी ।

भाषाटीकासहिता ।

गणपतिस्तुतिः ।

यद्गण्डमण्डलगलन्मधुवारिबिन्दु-
पानालसातिनिभृता ललितालिमाला ।
सद्गुञ्जितेन विनिहन्ति नवेन्द्रनील-
शङ्कां स वो गणपतिः शिवमातनोतु ॥ १ ॥

जिसके कपोलस्थलसे चुचुहाती हुई मधुकी बूँदोंको धीरे २ पीते हुए अत्यन्त तृप्त सुन्दर भौंराओंकी पंक्ति अपने श्रेष्ठ गुंजारसे नई इंद्रनीलमणिकी शंकाको दूर कर रही है सो गणेश तुम्हारा कल्याण करे ॥ १ ॥

श्रीशारदास्तुतिः ।

इन्दीवरीभवति यच्चरणारविन्द-
द्वन्द्वे पुरन्दरपुरस्सरदेवतानाम् ।
वन्दारुता कलयतां सुकिरीटकोटिः
श्रीशारदा भवतु सा भवपारदा वः ॥ २ ॥

जिसके चरणारविन्दोंपर शिर झुकातेमये इन्द्रादिक देवताओंकी किरीट मुकुट कमलकी शोभाको प्राप्त होयँ ऐसी जो शारदा सो तुम्हें संसारसागरसे उत्तीर्ण करनेवाली होय ॥ २ ॥

अन्थारम्भः ।

श्रीवैद्यनाथतनयः सुनयः सुशीलः ।
श्रीशालिनाथ इति विश्रुतनामधेयः ।
तेनावलोक्य विधिवद्विविधप्रबन्धा-
नारभ्यते सुकृतिना रसमञ्जरीयम् ॥ ३ ॥

सुंदर नीति और शीलवाले श्रीवैद्यनाथके पुत्र श्रीशालिनाथने अनेक प्रकारकी रसविधियोंको विधिवत् देखकर इस रसमंजरीके बनानेका आरम्भ किया है ॥ ३ ॥

सन्मधुव्रतवृन्दानां सततं चित्तहारिणी ।
अनेकरसपूर्णेयं क्रियते रसमञ्जरी ॥ ४ ॥

सहृदयरूप भौंराओंके समूहके निरन्तर चित्त हरनेवाली अनेक रसोंसे भरीहुई यह " रसमञ्जरी " बनाई जाती है ॥ ४ ॥

पारदप्रकरणम् ।

हरति सकलरोगान्मूर्च्छितो यो नराणां
वितरति किल बद्धः खेचरत्वं जवेन ॥
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दितं शम्भुबीजं ।
स जयति भवसिन्धोः पारदः पारदोऽयम् ॥ ५ ॥

मूर्च्छित किया पारा मनुष्योंके सब रोगोंका नाश करता है और गोली बंधनेपर वेगसे आकाशमें चलनेकी शक्ति देता है ऐसा जो यह पारा है वह सम्पूर्ण देवता, मुनि और ऋषियोंसे पूजित और संसारसागरसे पार लगानेवाला है ॥ ५ ॥

तेजो मृगाङ्कमौलेः सोढुं यन्नैव तेजसां पुञ्जैः ।
अजरामरतां वितरति कल्पतरुं तं रसेश्वरं वन्दे ॥ ६ ॥

महादेवका वीर्य तेजोंके पुञ्जोंकरिके सहन करनेको शक्य नहीं है वह शिववीर्य अजरता और अमरताको देता है. उस कल्पवृक्षरूप पारदको नमस्कार करता हूं ॥ ६ ॥

यो न वेत्ति कृपाराशिं[1] रसं हरिहरात्मकम् ।
वृथा चिकित्सां कुरुते स वैद्यो हास्यतां व्रजेत् ॥ ७ ॥

जो वैद्य विष्णु और शिवके इस आत्मारूप पारेके गुणोंको नहीं जानता है उसका इलाज करना वृथा है और उसकी हँसीभी होती है ॥ ७ ॥

शुष्केन्धनमहाराशिं यद्वद्[2] दहति पावकः ।
तद्वद्दहति सूतोऽयं[3] रोगान्दोषत्रयोद्भवान् ॥ ८ ॥

जैसे सूखे ईंधनके बडे ढेरको अग्नि जलादेती है उसी तरह (धातुगत) कफ वात पित्तसे उत्पन्न रोगोंको पारद जलादेताहै ॥ ८ ॥

गुरुसेवां विना कर्मणो निष्फलत्वम् ।

गुरुसेवां विना कर्म यः कुर्यान्मूढचेतनः ।
स याति निष्फलत्वं हि स्वप्नलब्धं यथा धनम् ॥ ९ ॥
विद्यां ग्रहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मबलादिना ।
न तेषां सिध्यते किंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥ १० ॥

जो मूढबुद्धिवाले मनुष्य गुरुसेवाके विना रसादिक बनानेमें प्रवृत्त होते हैं उनकी वह क्रिया स्वप्नमें प्राप्त हुए धनकी तरह नष्ट होजाती है और जो चोरी छल और बलसे विद्या ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं उनका द्रव्य व मंत्र व औषधादिक कुछ भी सिद्ध नहीं होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

---

१ क्रियाराशिं २ यथा। ३ तथा धातुगतान् सूतो । इति पाठान्तरम् ।

गुरोर्लक्षणम् ।

मंत्रसिद्धो महावीरो निश्चलः शिववत्सलः ।
देवीभक्तः सदाधीरो देवतायागतत्परः ॥ ११ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः कुशलो रसकर्मणि ।
एतल्लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत् ॥ १२ ॥

नीचे लिखेहुये लक्षणोंसे युक्त मनुष्यको रसविद्याका गुरु समझना चाहिये मंत्रकी सिद्धि होय, बलवान् होय, जितेन्द्रिय होय, शिव और देवीका भक्त होय, सुखदुःखमें सदा धीरज धरे, देवताओंके यज्ञमें तत्पर और सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारांशको जाननेवाला रस बनानेमें निपुण होय ॥ ११ ॥ १२ ॥

शिष्यलक्षणम् ।

शिष्यो निजगुरोर्भक्तः सत्यवक्ता दृढव्रतः ।
निरालस्यः स्वधर्मज्ञो देव्याराधनतत्परः ॥१३॥

अपने गुरुमें श्रद्धा करनेवाला, सत्यभाषी, विधिवत् नियम पालक, आलस्यरहित, अपने धर्मको जाननेवाला, देवीकी उपासनामें तत्पर इन लक्षणोंसे युक्त शिष्य होना चाहिये ॥ १३ ॥

पारदनामानि ।

शिवबीजं सूतराजः पारदश्च रसेन्द्रकः ।
एतानि रसनामानि तथान्यानि शिवे यथा॥१४॥

पारेको शिवबीज, सूतराज, रसेन्द्र, पारद कहते हैं और जो २ शिवके नाम हैं वे बीजयुक्त पारेके नाम हैं जैसे शम्भुबीज, हरबीज, इत्यादिक ॥ १४ ॥

पारदलक्षणम् ।

अन्तःसुनीलोबहिरुज्ज्वलोयोमध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः ।
शस्तोप्यधूम्रःपरिपांडुरश्चचित्रोनयोज्योरसकर्मसिद्धौ १५

जो पारा भीतरसे स्वच्छ नील रंगका होय और बाहर चमकदार दुपहरके सूर्य समान प्रकाशित होय वह श्रेष्ठ है. और धूंधला चारों ओरसे पीला २ चित्र विचित्र हो वह रसादिक बनानेके योग्य नहीं ॥ १५ ॥

दोषमुक्तो यदा सूतस्तदा मृत्युरुजापहः ।
साक्षादमृतमेवैष दोषयुक्तो रसो विषम् ॥ १६ ॥

जो पारा दोषरहित होता है वह मृत्यु आदि रोगोंका नाश करनेवाला साक्षात् अमृतके समान गुणदायक होता है और दोषसहित पारा विष याने जहरके समान है, अतएव शुद्ध किया हुआ पाराही काममें लाना चाहिये ॥ १६ ॥

पारदे दोषाः ।

नागो वङ्गोऽग्निचाञ्चल्यमसह्यत्वं विषं गिरिः ।
मला ह्येते च विज्ञेया दोषाः पारदसंस्थिताः ॥१७॥

सीसा, रांग, अग्नि, चपलता, असह्यत्व, विष, गिरिदोष और मल इतने दोष पारेमें होते हैं इन दोषोंके रहनेसे पारा मनुष्योंके क्रमसे नीचे लिखे हुए विकार पैदा करता है ॥ १७ ॥

जाड्यं कुष्ठं महादाहं वीर्यनाशं च मूर्च्छनाम् ।
मृत्युं स्फोटं रोगपुञ्जं कुर्वन्त्येते क्रमान्नृणाम्॥१८॥

सीसेसे जडता, रांगसे कोढ, अग्निसे दाह, चपलतासे वीर्यनाश, असह्यत्वसे मूर्च्छा, विषसे मौत, गिरिदोषसे फोडा और मलसे रोगोंका समूह मनुष्योंको हो जाता है ॥ १८ ॥

अथ पारदशोधनविधिः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि पारदस्य च शोधनम् ।
रसो ग्राह्यः सुनक्षत्रे पलानां शतमात्रकम् ॥ १९ ॥

अथ यहांसे मैं पारदके शोधनेकी विधि कहताहूं कि अच्छे शुभ नक्षत्रमें १०० पल अर्थात् ४०० तोले पारा लावे ॥ १९ ॥

पञ्चाशत्पञ्चविंशद्वा दशपञ्चैकमेव च ।
पलादूनं न कर्तव्यं रससंस्कारमुत्तमम् ॥ २० ॥

१०० पल न लावे तो ५० पल अथवा २५ पल अथवा दश पल अथवा पांच पल; परन्तु एक पलसे कम शोधनेके लिये यत्न न करे क्योंकि इसमें परिश्रम बहुत होता है और शुद्ध होनेपर बहुत थोडा हाथ लगता है ॥ २० ॥

पलत्रयं चित्रकसर्षपाणां कुमारिकन्याबृहतीकषायैः ।
दिनत्रयं मर्दितसूतकस्तु विमुच्यते पञ्चमलादिदोषैः २१

तीन पल चीता और सरसों ले ग्वारपाठा और छोटी कटेरीका कषाय करके तीन दिन खरल करनेसे पारेके पांच मलादिक दोष दूर होजाते हैं ॥ २१ ॥

इष्टकारजनीचूर्णैः षोडशांशं रसस्य च ।
मर्दयेत्तं तथा खल्वे जम्बीरोत्थद्रवैर्दिनम् ॥ २२ ॥

पारेका सोलहवाँ भाग ईंट और हलदीका चूरा लेकर खरल करे फिर खरलमें डाल दिनभर नींबूके रसमें घोटे ॥ २२ ॥

कांजिकैः क्षालयेत्सूतं नागदोषं विमुञ्चति ।
विशालाङ्कोलचूर्णेन वंगदोषं विमुञ्चति ॥ २३ ॥

फिर कांजीसे धोनेपर पहिले कहा हुआ नागदोष अर्थात् सीसा दोष दूर होजाता है और इन्द्रायण और अंकोलके चूरेसे घोटनेपर रांगका दोष दूर होजाता है ॥ २३ ॥

राजवृक्षो मलं हन्ति पावको हन्ति पावकम् ।
चाञ्चल्यं कृष्णधत्तूरस्त्रिफला विषनाशिनी ॥ २४ ॥

अमलतास मलको दूर करता है, चीतेकी छालका क्वाथ अग्निदोषको मारता है, काला धतूरा चपलता दोषको और त्रिफला विषदोषको दूर करती है ॥ २४ ॥

कटुत्रयं गिरिं हन्ति असह्यत्वं त्रिकंटकः ।
प्रतिदोषं पलांशेन तत्र सूतं सकांजिकम् ॥ २५ ॥

त्रिकटु पर्वतके दोषको और गोखरू असह्यत्वको दूर करता है, प्रत्येक दोषके दूर करनेके लिये एक एक पल कांजी प्रत्येक पल पारेमें डाले ॥ २५ ॥

सुवस्त्रगालितं खल्वे सूतं क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ।
उद्धृत्य चारनालेन मृद्भांडे क्षालयेत्सुधीः ॥ २६ ॥

फिर गाढे वस्त्रमें छानकर खरल करे फिर मिट्टीके बर्तनमें कांजीसे धोवे ॥ २६ ॥

सर्वदोषविनिर्मुक्तः सर्वकंचुकवर्जितः ।
जायते शुद्धसूतोऽयं योजयेद्रसकर्मसु ॥ २७ ॥

इस प्रकार पारा सब दोषों और सातों कांचलियोंसे अलग होजाता है और शुद्ध होनेपर सब प्रकारके रस बनानेमें काम आता है ॥ २७ ॥

रसस्य दशमांशं तु गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् ।
जम्बीरोत्थद्रवैर्यामं पात्यं पातनयंत्रके ॥ २८ ॥

फिर पारेसे दशवाँ हिस्सा गंधक डालकर नींबूके रसमें पहरभर खरल कर पातनयंत्रसे (पात्य) उडायले ॥ २८ ॥

पुनर्मर्द्य पुनः पात्यं सप्तवारं विशुद्धये ।
युक्तं सर्वस्य सूतस्य तप्तखल्वे विमर्दनम् ॥ २९ ॥

---

१ पाच्यं पातालयंत्रके । इति पाठान्तरम् ।

इसी प्रकार सातवार बार २ खरल करे और बार बार पातनयन्त्रसे उडावे फिर सबको मिलायकर तप्त खरलमें मर्दन करे ॥ २९ ॥

अथाशकृत्तुषाग्निं तु भूगर्भे त्रितयं क्षिपेत् ।
तस्योपरि स्थितं खल्वं तप्तखल्वमिदं स्मृतम् ॥ ३० ॥

बकरीकी मेंगनी और तुषकी आग पृथ्वीमें जलाकर उसके ऊपर खरल रखदे इसीको तप्तखल्व कहते हैं, इसमें नीचे लिखी हुई रीतियोंसे पारा घोटा जाता है और शीघ्रही बहुत शुद्ध होजाता है ॥ ३० ॥

पारदशोधनस्यान्यः प्रकारः ।

कुमार्याश्च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत् ।
पातयेत्पातनायंत्रे सम्यक्शुद्धो भवेद्रसः ॥ ३१ ॥

घीगुवार और हल्दीके चूरणसे पारेको दिनभर घोटे फिर पातालयंत्रसे उडावे तो पारा शुद्ध होय ॥ ३१ ॥

श्रीखण्डदेवदारु च काकतुण्डीजयाद्रवैः ।
कर्कोटीमुशलीकन्याद्रवं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥
दिनैकं मर्दयेत्पश्चाच्छुद्धं च विनियोजयेत् ॥ ३२ ॥

चन्दन देवदारु कौआठोंडी हरड कर्कोटी मुसली और घीगुवारके रससे दिनभर मर्दन करनेसे पारा शुद्ध होजाता है ॥ ३२ ॥

अन्यच्च ।

अथवा हिंगुलात्सूत आहरेत्स निगद्यते ॥ ३३ ॥
जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितं हिंगुलं दिनम् ।
ऊर्ध्वपातनयंत्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ॥ ३४ ॥
कंचुकैर्नागवंगाद्यैर्विमुक्तो रसकर्मणि ।
विना कर्मकृतेनैव सूतोऽयं सर्वकार्यकृत् ॥ ३५ ॥

सिंगरफसे पारा निकालनेकी विधि कहते हैं-सिंगरफको जंभीरी या नींबूके रसमें दिनभर मर्दन कर डमरूयंत्रसे उडावे तो निर्मल पारा निकले सो कांचली सीसा बंग आदि दोषोंसे रहित होकर बिना और संस्कारोंके शुद्ध किया हुआ ही सम्पूर्ण रसादिक बनानेमें अत्यन्त उपयोगी होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

सर्वसिद्धमतमेतदीरितं सूतशुद्धिकरमद्भुतं परम् ।
अल्पकर्मविधि भूरिसिद्धिदं देहलोहकरणे हि शस्यते ३६

मैंने यह शोधनविधि सब महात्माओंके मतानुसार कही इसमें थोडा परिश्रम और बहुत लाभ होता है और शरीरको लोहवत् कडा करनेमें अत्यन्त उपयोगी है ॥ ३६ ॥

संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम् । देहस्य नाशं विविधं च कुष्ठं कष्टं च रोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य बिना शोधे हुए पारेका सेवन करते हैं उनके अनेक व्याधि देहनाश अनेक प्रकारके कोढ कष्ट और भांति २ के रोग पैदा होजाते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां रसशोधनप्रकरणकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसजारणमुत्तमम् ।
अथाजीर्णमबीजं च सूतकं यस्तु घातयेत् ॥ १ ॥
ब्रह्महा स दुराचारी मम द्रोही महेश्वरि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जारितं मारयेद्रसम् ॥ २ ॥

हे पार्वती ! जो चंचल और अबीज पारेको मारे है वह ब्रह्महत्यारा कुकर्मी और मेरा द्रोही है इससे सर्व उपायोंसे जीर्ण पारेको मारे ॥ १ ॥ २ ॥

प्रक्षिप्य तोयं मृत्कुण्डे तस्योपरि शरावकम् ।
सच्चूर्णं मेखलायुक्तं स्थापयेत्तस्य चान्तरे ॥ ३ ॥
रसं क्षिप्त्वा गंधकस्य रजस्तस्योपरि क्षिपेत् ।
समभागं ततो दद्याच्छरावेण पिधापयेत् ॥ ४ ॥
लघीयसीं भस्ममुद्रां ततः कुर्याद्भिषग्वरः ।
आरण्योपलकैः सम्यक् चतुर्भिः पुटमाचरेत् ॥ ५ ॥
एवं पुनः पुनर्गंधं दत्त्वा दत्त्वा भिषग्वरः ।
सम्यक् कुर्वीत सूतस्य देवि षड्गुणजारणम् ॥ ६ ॥

मिट्टीके कुंडेमें पानी भरके ऊपर एक शराव रखदे और बीचमें गोल मेखलासी आड लगायकर शरावके बीचर पारा रखदे और उसके ऊपर गंधकका चूरा डालदे और फिर दूसरे शरावसे ढकदे और राखसे उसको लेपदे और फिर आरने उपलाओंकी आग नीचे लगायदे इसी प्रकार बारबार गंधक उसके ऊपर डालता रहे हे देवि ! इसी प्रकार पारेका षड्गुण जारण होजाता है ॥ ३-६ ॥

इति षड्गुणजारणम् ।

अथ स्वर्णजारणम् ।

शस्यो रसः स्यात्पटुशिग्रुतुल्यैः सराजिकैर्व्यो-
षणकैस्त्रिरात्रम् । पिष्टस्ततः स्विन्नतनुः सुवर्ण-
मुख्यानयं खादति सर्वधातून् ॥ ७ ॥
अथवा विडयोगेन शिखिपित्तेन लेपितम् ।
चरेत्सुवर्णं रसराट् तप्तखल्वे यथासुखम् ॥ ८ ॥
निर्दग्धशंखचूर्णं च रविक्षीरेण संप्लुतम् ।

पुटितं शतशो देवि प्रशस्तं जारणं विदुः ॥ ९ ॥
स्वर्णाभ्रसर्वलोहानि पर्यंशानि च जारयेत् ।
अनेन विधिना सूतं चतुःषष्ट्यंशकादिना ।
द्वात्रिंशत्षोडशांशेन जारयेत्कनकं बुधः ॥ १० ॥

सेंधानोन सहँजनेके बीज तूतिया राई और सोंठ मिरच पीपल इन करके पारेको तीन दिन खरल करे फिर स्वेदसंस्कार करनेसे पारा सुवर्णादिक सब धातुओंको खाजाता है ॥ दूसरी रीति ॥ नमक और मोरके पित्तसे लेपन करे और तप्तखल्वमें खरल करे तो पारा सहजहीमें सोनेको खा जाता है और जला हुआ शंखका चूरा आकके दूधमें मिलाकर पुट देनेसे पारेका उत्तम जारण होता है इसी प्रकार सुवर्ण अभ्रक लोहा इन सबके जारणमें पारेका हिस्सा चौसठवां अथवा बत्तीसवां अथवा सोलहवां देनेसे सुवर्णको जलावे ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

इति सुवर्णजारणम् ।

अथ रसमारणम् ।

द्विपलं शुद्धसूतं च सूतार्द्धं शुद्धगंधकम् ॥ ११ ॥
कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं निरन्तरम् ।
रुद्ध्वा तद्भूधरे यंत्रे दिनैकं मारयेत्पुटात् ॥ १२ ॥

शुद्ध किया हुआ पारा दो पल और पारेसे आधी शुद्ध गंधक दोनोंको घीगुवारके रसमें दिनभर मर्दन करे फिर भूधरयंत्रमें धरके एक दिनमें उडायले ॥ ११ ॥ १२ ॥

इति रसमारणम् ।

अथ रसभस्मविधिः ।

भुजंगवल्लीनीरेण मर्दितं पारदं दृढम् ।
कर्कोटीकंदमृन्मूषासंपुटस्थं पुटे गजे ।
भस्म तथोगवाहि स्यात्सर्वकर्मसु भोजयेत् ॥१३॥

पानके रसमें पारेको खूब रगडे मिट्टीकी मूषामें कर्कोटीके कंदसे संपुट दे फिर गजपुटकी आग देनेसे यह भस्म योगवाही होती है फिर इसको हरएक योगमें लगावे ॥ १३ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

श्वेताङ्कोलजटावारिमर्द्यः सूतो दिनत्रयम् ।
पुटितश्चांधमूषायां सूतो भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ १४ ॥
प्रत्यहं रक्तिकाः पञ्च भक्षयेन्मधुसर्पिषा ।
को वा तस्य गुणान्वक्तुं भुवि शक्नोति मानवः ॥१५॥

सफेद अंकोलकी जटाके पानीमें तीन दिनतक पारेका मर्दन करे फिर अंधमूषामें रखकर अग्नि जलानेसे पारा भस्म होय प्रतिदिन शहद और घीके संग पांच रत्ती खाय तो पृथ्वीपर कौनसा मनुष्य उसके गुणोंको कहनेका सामर्थ्य रखता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ रससिन्दूरकरणम् ।

पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रं सुगंधकम् ॥ १६ ॥
विधिवत्कज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधांकुरवारिभिः ।
भावनात्रितयं दत्त्वा स्थालीमध्ये निधापयेत् ॥१७॥
विरच्य कवचीयंत्रं वालुकाभिः प्रपूरयेत् ।
दद्यात्तदनु मंदाग्निं भिषग्यामचतुष्टयम् ॥ १८ ॥

जायते रससिंदूरं तरुणारुणसन्निभम् ।
अनुपानविशेषेण करोति विविधान्गुणान् ॥१९॥

एक पल पारा शुद्ध और उतनीही गंधक बडकी जडके पानीसे विधिपूर्वक कजली करे तीन भावना देकर थालीमें रखदे फिर काचकी कुप्पीमें भरकर वालुकायंत्रमें चार पहरतक मंदी मंदी आग देता रहे तो दुपहरके सूर्यके समान प्रकाशित रससिंदूर होय और अनुपानसे सेवन करनेपर अनेक प्रकारके गुण करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८॥१९॥

अथान्यः प्रकारः ।

गंधकेन समः सूतो निर्गुंडीरसमर्दितः ।
पाचितो वालुकायंत्रे रक्तं भस्म प्रजायते ॥२०॥

गंधकके समान पारा लेकर निर्गुंडीके रसमें रगडा करे फिर वालुकायंत्रमें रखकर अग्नि दे तो सुरख रंगकी भस्म होय ॥ २० ॥

अन्यच्च ।

सूतार्द्धं गंधकं शुद्धं माक्षिकोद्भूतसत्त्वकम् ।
गंधतुल्यं विमर्द्याथ दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः ॥२१॥
स्थापयेद्वालुकायंत्रे काचकुप्यां विपाचयेत् ।
अंधमूषागतं वाथ वालुकायंत्रके दिनम् ।
पक्वं संजायते भस्म दाडिमीकुसुमोपमम् ॥ २२ ॥

पारेसे आधी गंधक और गंधकके बराबर सोनामक्खीका सत्त्व लेकर तीनोंको निर्गुंडीके रसमें दिनभर रगडकर वालुकायंत्रमें काचकी कुप्पीमें भरकर आग लगावे अथवा अंधमूषामें रखकर वालुकायंत्रके भीतर दिनभर अग्नि देनेसे अनारकी कलीसी लाल भस्म होजाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अन्यच्च ।

पृथक् समं समं कृत्वा पारदं गंधकं तथा ॥ २३ ॥
नवसारं धूमसारं स्फटिकीं याममात्रके ।
निम्बुनीरेण संमर्द्य काचकुप्यां विपाचयेत् ॥ २४ ॥
मुखे पाषाणपाटिकां दत्त्वा मुद्रां प्रलेपयेत् ।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैः पृथक् संशोष्य वेष्टयेत् ॥ २५॥
सच्छिद्रायां मृदः स्थाल्यां कूपिकां सन्निवेशयेत् ।
पूरयेत्सिकतापूरैरागलं मतिमान्भिषक् ॥ २६ ॥
निवेश्य चुल्ल्यां दहनं मंदमध्यखरं क्रमात् ।
प्रज्वाल्य द्वादशं यामं स्वांगशीतलमुद्धरेत् ॥ २७ ॥
स्फोटयित्वा पुनः स्थालीमूर्ध्वगं गंधकं त्यजेत् ।
अधःस्थं रससिन्दूरं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २८ ॥

बराबर बराबर गंधक और पारा ले नौसादर और धूमसार फिटकरीसे पहरभर मर्दन कर नींबूके रसमें घोटे फिर काचकी कुप्पीमें भरे उसके मुखको कडी ईंटसे खामदे फिर सात तह कपडमिट्टीकी चढावे फिर कुप्पीको गलेतक वालूसे भरेहुए बर्तनमें रख चूल्हेपर चढाय पहिले मन्दी फिर मध्यम फिर बहुततेज आग बारह पहर जलावे ठंढे होनेपर सीसीको उतारे तोडले ऊपर जो गंधक उड जाय उसे छोडदे और नीचे रससिंदूरको लेकर सब कामोंमें लगावे ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

गन्धकं धूमसारं च शुद्धसूतं समं समम् ।
यामैकं मर्दयेत्खल्वे काचकुप्यां निवेशयेत् ॥ २९ ॥

रुद्ध्वा द्वादशयामं तु वालुकायंत्रगं पचेत् ।
स्फोटयेत्स्वांगशीतं तमूर्ध्वलग्नं तु तं त्यजेत् ।
अधःस्थं मृतसूतं च सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३० ॥

गंधक धूमसार और शुद्ध पारेको बराबर बराबर लेकर खरलमें पहर भरतक खरल कर काचकी सीसीमें भर वालुकायंत्रमें बारह पहरतक आग जलावे ठंढे होनेपर शीशीमें उतारकर फोडे ऊपर गई हुई गंधकको छोडदे नीचेके पारेको सब कामोंमें काम लावे ॥ २९ ॥ ३० ॥

अन्यच्च ।

भागौ रसस्य त्रय एव भागा गंधस्य भागं पवनाशनस्य ।
संमर्द्य गाढं सकलं सुभांडे तां कज्जलीं काचकृतेविदध्यात्।
संवेष्ट्य मृत्कर्पटकैः खटांतां ।
मुखे सचूर्णां खटिकां च कृत्वा ।
क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा
तां वालुकायंत्रगतां ततः स्यात् ॥ ३२ ॥
बंधूकपुष्पारुणमीशजस्य भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु ।
निजानुपानैर्मरणं जरां च निहन्ति वल्लक्रमसेवनेन॥३३॥

दो भाग पारा तीन भाग गंधक और एक भाग सीसा इनकी खूब कजली कर काचकी शीशीमें भरदे फिर खडिया मिट्टीसे कपडमिट्टी कर मुँहको बन्द कर तीन दिनतक मन्दी मध्यम और तेज अग्निसे वालुकायंत्रमें पकावे दुपहरियाके फूलके समान पारेकी भस्मको सब रोगोंमें काम लावे अलग २ अनुपानसे दो रत्ती भस्मका सेवन किया जाय तो इससे मौत और बुढापा पास नहीं आसकते ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

पक्वमूषागतं सूतं गंधकं चाधरोत्तरम् ।
तुल्यं संचूर्णितं कृत्वा काकमाचीद्रवं पुनः ॥ ३४ ॥
द्वाभ्यां चतुर्गुणं देयं द्रवं मूषां निरुध्य च ।
पाचयेद्गडुकायंत्रे क्रमवृद्धाग्निना दिनम् ॥ ३५ ॥
आरक्तं जायते भस्म सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३६ ॥

मूषामें निकलाहुआ शुद्ध पारा उतनीही गंधक ऊपर नीचे रखकर फिर दोनोंसे चौगुना मकोयका अर्क भरदे फिर गडुकायंत्रमें क्रमसे बढी अग्नि मंदी मध्यम बहुत तेज दिनभर लगावे तो सुरख-भस्म होजाय सब योगोंमें फिर काम लावे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

अश्वगंधादिवर्गेण रसं स्वेद्यं प्रयत्नतः ।
रसतुल्यं गंधकं दत्त्वा मर्दयेत्कुशलो भिषक् ॥३७॥
पाचयेद्रससिंदूरं जायतेऽरुणसंनिभम् ।
श्रेष्ठं सर्वरसानां हि पुष्टिकामवलप्रदम् ॥ २८ ॥
इदमेवायुषो वृद्धिं कर्तुं नान्यदलं भवेत् ।
विनापि स्वर्णराजेन मुनिभिः परिकीर्त्तितम् ॥२९॥

असगंधादि वर्गसे प्रथम पारेको स्वेद्य कर उसके समान गंधक डाल रगडाकरके फिर नीचे आग देनेसे सूर्यके समान प्रकाशित रससिन्दूर बनकर तैयार हो जाता है यह सब रसोंमें श्रेष्ठ, पुष्टि, काम और बलदायक है उमर बढानेवाली कोई दूसरी वस्तु स्वर्णराजके विनाभी इसके सिवाय कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अन्यच्च ।

टङ्कणं मधु लाक्षाऽथ ऊर्णा गुंजायुतो रसः ।
मर्दयेद्भृंगजैर्द्रावैर्दिनैकं वा घमेत्पुनः ।
ध्मातो भस्मत्वमायाति शुद्धः कर्पूरसन्निभः ॥४०॥

सुहागा शहद लाख ऊन और एक रत्ती पारा भांगरेके अर्कमें दिनभर खरल कर धौंकनीसे फूंकनेपर कर्पूरके समान भस्म होजाती है ॥ ४० ॥

अथ रसकर्पूरः ।

खटीष्टयगैरिका वल्मीमृत्तिका सैन्धवं समम् ॥४१॥
भागद्वयमितं गंधं रसं भागद्वयं स्मृतम् ।
हंडिकायां विनिक्षिप्य पार्श्वे पार्श्वे च खर्पटान् ॥४२॥
दग्ध्वाऽथ हंडिकां दत्त्वा द्विरष्टप्रहरं पचेत् ।
मृतसूतं तु गृह्णीयाच्छुद्धकर्पूरसन्निभम् ॥ ४३ ॥

खडिया ईंट गेरू बांबीकी मिट्टी सेंधानमक बराबर बराबर ले इनसे दूनी गंधक और दूना पारा लेकर खरल करे फिर हंडियामें भर चारों ओर खीपडा लगाय आगपै धर सोलह पहर आग जलावे फिर शुद्ध कपूरके आकारके मरेहुए पारेको ले लेवे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥४३ ॥

अन्यच्च ।

पिष्टं पांसुपटुप्रगाढममलं वज्राम्बुनानैकशः
सूतं धातुयुतं खटीकवलितं तं संपुटे रोधयेत् ।
अन्तःस्थं लवणस्य तस्य च तले प्रज्वाल्य वह्निं हठा-
द्भस्म ग्राह्यमथेन्दुकुंदधवलं भस्मोपरिस्थं शनैः४४॥
तद्वल्लद्वितयं लवंगसहितं प्रातः प्रभुक्तं नृणा-

मूर्च्छां रेचयति द्विगाममसकृत्पेयं जलं शीतलम् ।
एतद्धंति च वत्सरावधि विषं षाण्मासिकं मासिकं
शैलोत्थं गरलं मृगेन्द्रकुटिलोद्भूतंचतात्कालिकम् ४५

खारानिमक और थूहरके दूधमें कई बार पारेको खरल कर संपुटमें धर खडियासे कपडमिट्टी कर आगपै धरे नीचे और ऊपर नमक धरे चन्दासी सफेद भस्म धीरे धीरे उतार ले यही रसकपूर है, जो मनुष्य प्रातःकाल लौंगके संग इसको ६ रत्ती खाय तो दो पहरमें दस्त होय. ऊपरसे ठंडा जल पीवे यह एक बरसके छः महीनोंके महीनेके शिलासे निकले विषको और सिंहके नखसे उत्पन्न और तत्कालके विषको मारे है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

रसमूर्च्छनमाह ।

मेघनादवचा हिंगुलशुनैर्मर्दयेद्रसम् ।
नष्टदिष्टं तु तद्गोलं हिंगुना वेष्टयेद्बहिः ॥ ४६ ॥
पचेल्लवणयंत्रस्थं दिनैकं चंडवह्निना ।
ऊर्ध्वलग्नं समादाय दृढं वस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ४७ ॥
ऊर्ध्वाधो गंधकं तुल्यं दत्त्वा सौम्यानले पचेत् ।
जीर्णे गंधे पुनर्देयं षड्भिर्वारैः समं समम् ।
षड्गुणे गंधकं जीर्णे मूर्च्छितो रोगहा भवेत् ॥४८॥

चौराई, वच, हींग और लहसनसे पारेको खरल कर गोला बनायकर बाहरकी ओर हींगसे लपेटकर लवणयंत्रमें रखकर नीचे प्रचंड आग जलाय दिनभर पकावे फिर काचकी कुप्पीमें जो ऊपर लगजाय उसे ले कपडेसे मजबूत लपेटे ऊपर और नीचे गंधक रख मंदी मंदी आग जलावे फिर छः बार बराबर बराबर गंधक देता रहे इसी प्रकार करते रहनेसे षड्गुण जीर्ण गंधक मूर्च्छित होता है, वह सब रोगोंको नाश करनेवाला होता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

लोहपात्रेऽथवा ताम्रे पलैकं शुद्धगंधकम् ॥ ४९ ॥
मृद्वग्निना द्रुते तस्मिञ्छुद्धं सूतपलत्रयम् ।
क्षिप्त्वाथ चालयेत्किंचिल्लोहदर्व्या पुनःपुनः ॥५०॥
गोमयं कदलीपत्रं तस्योपरि च ढालयेत् ।
इत्येवं गंधवद्धं च सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ५१ ॥

लोहे अथवा तांबेके पात्रमें एक पल शुद्ध गंधक धीरे २ आगपर गरम करके तीन पल पारा डालकर लोहेके पल्टासे चलावे फिर केलेके पत्तोंपर गोमय लगायकर वापे ढाले तो गंधक बंध जाय फिर वह सब रोगोंपर काममें लावे ॥ ४९--५१ ॥

गुणमाह ।

मारितो देहसिद्ध्यर्थं मूर्च्छितो व्याधिनाशने ।
रसभस्म क्वचिद्रोगे देहार्थे मूर्च्छितं क्वचित् ।
बद्धो द्वाभ्यां प्रयुञ्जीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ५२ ॥

मरा हुआ गंधक देहकी सिद्धिमें काम आता है और मूर्च्छित रोगोंका नाश करता है और पारेकी भस्म रोगमें और मूर्च्छित देहके लिये, परन्तु बद्धशास्त्रकी रीतिसे देहके लिये और रोगोंके लिये काम आता है ॥ ५२ ॥

बद्धपारदस्य लक्षणम् ।

अक्षयी च लघुद्रावी तेजस्वी निर्मलो गुरुः ।
स्फुटनं पुनरावृत्तिर्बद्धसूतस्य लक्षणम् ॥ ५३ ॥
कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम् ।
दृश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्च्छितः सुतरां बुधैः ॥५४॥
आर्द्रत्वं च घनत्वं च चापल्यं गुरुतेजसम् ।

यस्यैतानि न दृश्यंते तं विद्यान्मृतसूतकम् ॥ ५५ ॥
रसस्तुपादांशसुवर्णजीर्णः पिष्टीकृतो गंधकयोगतश्च ।
तुल्यांशगंधैः पुटितःक्रमेण निर्बीजनामाखिलरोगहंता ॥ ५६ ॥
बीजीकृतैरभ्रकसत्त्वहेमताराऽर्ककान्तैः सह साधितोयः ।
पुनस्ततः षड्गुणगंधचूर्णैः सबीजबद्धोप्यधिकप्रभावः ५७
रसवीर्यविपाकेषु विद्यात्सूतं सुधामयम् ।
सेवितोऽसौ सदा देहे रोगनाशाय कल्पते ॥ ५८ ॥

बद्ध पारेके लक्षण ये हैं क्षीण न होय लघुद्रावी होय चमकीला होय निर्मल होय भारी होय और बिखरनेपर फिर इकट्टा होजाय और जब पारा कठोरता और चपलताको छोडकर काजलसा होजाय तब उसे बुद्धिमान् लोग अच्छी तरहसे मारा हुआ जाने जिस पारेमें गीलापन सघनता चपलता भीतरका चमचमाहट दिखलाई न दे तब उसको मृत पारद जानना चाहिये तथा जिसमें पारेसे चौथाई सुवर्ण जीर्ण हुआ हो और जो गंधकके योगसे पीसा गयाहो और तुल्य भाग करके क्रमसे पुट दिया गया हो उसको सब रोगोंका नाश करनेवाला निर्बीजनामा रस कहते हैं और अभ्रकसत्त्व सुवर्ण चांदी और लोहके संयोगसे पिष्टीकरके जारित और षड्गुण गंधक करके हत हो उस अधिक प्रभाववाले पारेको सबीजबद्ध कहते हैं ऐसे अमृततुल्य पारेको सेवन करनेसे रस और वीर्यका विपाक होताहै और देहके सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ५३–५८ ॥

अथ रससेवने पथ्यम् ।

कूष्मांडं कर्कटीं चैव कलिंगं कारवेल्लकम् ।
कुसुंभिकं च कर्कोटीं कदलीं काकमाचिकाम् ॥ ५९ ॥
ककाराष्टकमेतद्धि वर्जयेद्रसभक्षकः ।

हितं मुद्गांबुदुग्धाज्यं शाल्यन्नं च विशेषतः ॥ ६० ॥
शाकं पुनर्नवायास्तु मेघनादं च चिल्लिकाम् ।
सैन्धवं नागरं मुस्तं पद्ममूलानि भक्षयेत् ॥ ६१ ॥
अभ्यंगं मैथुनं स्नानं यथेष्टं च सुखांबुना ।
रूपयौवनसम्पन्नां सानुकूलां प्रियां भजेत् ॥ ६२ ॥
बुद्धिः प्रज्ञा बलं कांतिः प्रभा चैवं वयस्तथा ।
वर्द्धन्ते सर्वे एवैते रससेवाविधौ नृणाम् ॥ ६३ ॥
यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सह योजयेत् ।
रसेन्द्रो हरते रोगान्नरकुंजरवाजिनाम् ॥ ६४ ॥

नीचे लिखे हुए आठ ककार पारदके सेवनमें त्यागने चाहियें कोहला अथवा काशीफल वा पेठा १ ककडी २ तरबूज व कलींदा ३ करेला ४ कुसुम ५ कर्कोटी ६ केला ७ और मकोय ८ नीचे लिखी हुई वस्तु पारेके सेवनमें पथ्य हैं मूंग पानी दूध घी (कोई २ बकरीका दूध कहते हैं) और विशेष कर चावल सागमें साठी चौलाई मेथी सेंधानोन सोंठ मोथा पद्मकी जड खाना चाहिये, उबटना मैथुन सुखपूर्वक यथेष्ट जलसे स्नान और रूपवती नवीन स्त्री पारा सेवन करनेवालेको हितकारी है. पारेका सेवन करना बुद्धि बल रूप कान्ति और अवस्थाको बढाता है जिस रोगको जो योग हो उसको उसके साथ देनेसे पारा, मनुष्य हाथी और घोडोंके रोगोंकोभी दूर करता है ॥ ५९–६४ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्य्यां रसस्य जारणमारणकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथोपरसानाह ।

गंधकं वज्रवैकान्तं ममनं तालकं शिलाम् ।
खर्परं शिखितुत्थं च विमलां हेममाक्षिकम् ॥ १ ॥

कासीसं कांतपाषाणं वराटांजनहिंगुलम् ।
कंकुष्ठं शंखभूनागं टंकणं तु शिलाजतु ।
एते उपरसाः प्रोक्ताः शोध्या द्रव्याश्च मारयेत् ॥२॥

गंधक हीरा वैक्रान्त अभ्रक हरताल मनसिल खपरिया नीला-थोथा विमलीमक्खी सुवर्णमक्खी हीराकसीस कांतलोह कौडी सुरमा सिंगरफ मुरदाशंख गिडोयाशंख सुहागा और शिलाजीत ये इतने उपरस हैं इनको शोधना और मारना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अथ गंधकोत्पत्तिः ।

तत्रादौ गंधकोत्पत्तिं शोधनं त्वथ कथ्यते ॥ ३ ॥
श्वेतद्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्याः प्रसृतं रजः ।
क्षीरार्णवे तु स्नातायाः दुकूलं रजसान्वितम् ॥ ४ ॥
धौतं यत्सलिले तस्मिन् गंधवद्गंधकं स्मृतम् ।
चतुर्धा गंधकः प्रोक्तो रक्तपीतसितासितैः ॥ ५ ॥
रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्चैव रसायने ।
व्रणादिलेपने श्वेतः श्रेष्ठः कृष्णस्तु दुर्लभः ॥ ६ ॥
अशुद्धगंधः कुरुतेऽतिकुष्ठं तापं भ्रमं पित्तरुजं करोति ।
रूपंसुखं वीर्यबलं निहन्ति तस्मात्सुशुद्धं विनियोजनीयम्

प्रथम गंधककी उत्पत्ति तथा शोधनविधि कहते हैं पहिले श्रीपार्वतीजीको श्वेतद्वीपमें क्रिडा करते करते रजोदर्शन हुआ उन्हीं रुधिराप्लावित वस्त्रोंसे समुद्रमें स्नान किया और जलमें वस्त्र धोनेसे यह गंधक उत्पन्न हुआ. गंधक चार प्रकारका है लाल पीला सफेद और काला लाल गंधक सुवर्णके जारण मारणमें काम आता है, पीला गंधक रसायनमें और सफेद गंधक घावोंपर लेप करनेमें उपयोगी है और काला गंधक कठिनतासे मिलता है. बिना शोधा हुआ गंधक

कोढ ताप भ्रम और पित्तरोगोंको करता है. रूप सुख वीर्य और पुरुषार्थका नाश करता है इसलिये शोधा हुआ गंधकही काममें लगाना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ गंधकशोधनम् ।

साज्यभांडे पयः क्षिप्त्वा मुखं वस्त्रेण बंधयेत् ।
तत्पृष्ठे गंधकं क्षिप्त्वा शरावेणावरोधयेत् ॥ ८ ॥
भांडं निक्षिप्य भूम्यां तदूर्ध्वं देयं पुटं लघु ।
ततः क्षीरेण गंधं च शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ ९ ॥

घृतके चिकने बर्तनमें दूध भरकर उसका मुख कपडेसे बांध दे फिर उसपर गंधकका चूरा करके रखदे और ऊपरसे (सरवा) ढक हलकासा पुट लगाय बर्तनको पृथ्वीपर रखदे नीचे आग लगानेसे जो गंधक पिघलकर कपडेमें छनती हुई नीचे जायगी वह सब कामोंमें उपयोगी शुद्ध होजायगी ॥ ८ ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

गंधकं शोधयेद्दुग्धे दोलायंत्रेण तत्त्ववित् ।
तेन शुद्धो भवत्येष धातूनां प्राणमूर्च्छकः ॥ १० ॥

बुद्धिमान् दोलायंत्रद्वारा गंधकका दूधमें शोधन करे ऐसा करनेसे वह शुद्ध गंधक धातुओंके अत्यन्त उपयोगी होगा ॥ १० ॥

अन्यच्च ।

घृतयुक्तमयोदर्व्यां गंधं वह्नौ प्रगालयेत् ।
एकीभूतं ततो गंधं दुग्धमध्ये परिक्षिपेत् ॥ ११ ॥
तेन शुद्धो भवेद्गंधः सर्वयोगेषु योजयेत् ।
शोधितो रसराजः स्याज्जरामृत्युरुजापहः ।
अग्निसंदीपनं श्रेष्ठं वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ १२ ॥

लोहेकी कढैयामें घी भरके गंधक डालदे नीचे अग्निको जलायकर गंधककूं गलाय ले जब घुलकर एकसी होजाय तब दूधमें डालदे ऐसा करनेसे सब योगोंमें काम आने लायक गंधक शुद्ध होजाय. शोधी हुई गंधक बुढापे मृत्यु और सब रोगोंको नाश करे, जठराग्निको तेज करे और वीर्यको बढावे है ॥ ११ ॥ १२ ॥

इति गंधकशोधनम् ।

अथ गंधकतैलम् ।

अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा ।
गंधकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेत्तु तत् ॥ १३ ॥
तद्वर्तिर्ज्वलिता वंशैर्धृता धार्या त्वधोमुखी ॥ १४ ॥
तैलं पतत्यधो भांडे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ।
अग्निसंदीपनं श्रेष्ठं वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ १५ ॥

आक और थूहरके दूधसे कपडेको सात सातवार भिगोवे और सुखाले फिर गंधकको मक्खन घीमें पीसकर कपडेसे लगायले फिर उस कपडेकी बत्ती कर जलादे, जली हुई बत्तीको बांसकी पोरीमें लगायकर नीचेको करले, ऐसा करनेसे तैल नीचे बर्तनमें गिरेगा और सब काममें काम आवेगा, जठराग्नि और वीर्यको बढा-वेगा ॥ १३-॥ १५ ॥

इति गंधकतैलम् ।

अथ हीरकजातयः ।

श्वेतपीतारक्तकृष्णा द्विजाद्या वज्रजातयः ।
पुंस्त्रीनपुंसकं चेति लक्षणेन तु लक्षयेत् ॥ १६ ॥
वृत्ताः फलकसंपूर्णास्तेजोवंतो बृहत्तराः ।
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाविन्दुविवर्जिताः ॥१७॥

रेखाविन्दुसमायुक्ताः षट्कोणास्ताः स्त्रियः स्मृताः ।
त्रिकोणाः पत्रवद्दीर्घा विज्ञेयास्ते नपुंसकाः ॥ १८ ॥
सर्वेषां पुरुषाः श्रेष्ठा वेधका रसबंधकाः ।
स्त्रीवज्रंदेहसिद्ध्यर्थं क्रामणं स्यान्नपुंसकम् ॥ १९ ॥
विप्रो रसायने प्रोक्तः क्षत्रियो रोगनाशने ।
वादादौ वैश्यजातीयो वयःस्तंभे तुरीयकः ॥ २० ॥
स्त्री तु स्त्रियै प्रदातव्या क्लीबे क्लीबं तथैव च ।
सर्वेषां सर्वदा योज्याः पुरुषा बलवत्तराः ॥ २१ ॥

हीरा अपने पृथक् २ रंगोंसे चार वर्णका है जैसे श्वेत रंगका हीरा ब्राह्मणवर्ण, पीले रंगका क्षत्रिय वर्ण, लाल रंगका वैश्य वर्ण और काले रंगका शूद्रवर्ण है फिर नीचे लिखे हुए लक्षणोंसे इसको पुरुष स्त्री और नपुंसक जानना चाहिये अर्थात् गोल गाददार पूरा (टूटा हुआ न होय) तेजवान् चमकदार बडे रेखा और बिन्दुसे रहित हीरेको पुरुष कहते हैं और जिसमें रेखा और बिन्दुओंसे युक्त छः कोणवाले हीरेको स्त्रीसंज्ञक जानना और तीन कोणवाला पत्तेके समान लंबा हीरा नपुंसक होता है परंतु इन सबमें पुरुषसंज्ञक श्रेष्ठ होता है और यही पारेका वेधक है और बंधक है. स्त्रीसंज्ञक हीरा देहकी सिद्धिमें और नपुंसक क्रामणमें काम आता है ब्राह्मणवर्ण रसायन क्रियामें, क्षत्रिय रोगके नाश करनेमें, देहकी सिद्धिमें वैश्य-वर्ण और अवस्थाके बढनेमें, शूद्र वर्ण उपयोगी है. स्त्रीसंज्ञक हीरा स्त्रियोंको और नपुंसक नपुंसकको देना चाहिये क्योंकि स्त्रीसंज्ञक हीरा रूपको बढाता है और नपुंसक वीर्यको बढाता है और पुरुष-जातिका सबके लिये श्रेष्ठ है यह बलकारक और सब औषधियोंमें डालनेको उपयोगी है ॥ १७-२१ ॥

अथ वज्रशोधनम् ।

पांडुरोगं पार्श्वपीडां किलासं दाहसंततिम् ।
रोगानीकं गुरुत्वं च धत्ते वज्रमशोधितम् ॥ २२ ॥
व्याघ्रीकंदगतं वज्रं दोलायंत्रे विपाचितम् ।
सप्ताहं कोद्रवक्वाथे कौलत्थे विमलं भवेत् ॥ २३ ॥

अशुद्ध हीरा इतने रोग पैदा करता है पीलिया पसलीमें दरद किलास (सीफ) दाह जलन व भारीपन. इसलिये इसको प्रथम इन विधियोंसे शोधले पहिली विधि. हीरेको व्याघ्रीकंदमें रखकर दोलायंत्रद्वारा कोदों वा कुलथीके काढेमें सात दिनतक पचानेसे हीरा निर्मल और शुद्ध होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्यच्च ।

व्याघ्रीकंदगतं वज्रं मृदा लिप्तं पुटे पचेत् ।
अहोरात्रात्समुद्धृत्य हयमूत्रेण सेचयेत् ।
वज्रक्षीरेण वा सिंचेत्कुलिशं विमलं भवेत् ॥ २४ ॥

दूसरी विधि-पूर्वोक्तविधिसे हीरेको पचाकर व्याघ्रीकंदमें रखकर ऊपरसे कपडमिट्टी कर आगमें धरदे एक दिनरात पीछे निकाल कर उसपर घोडेका मूत या थूहरका दूध डालदे तो हीरा शुद्ध हो जायगा ॥ २४ ॥

अथ वज्रमारणम् ।

त्रिवर्षारूढकार्पासमूलमादाय पेषयेत् ।
त्रिवर्षनागवल्ल्याश्च द्रावेण तं प्रपेषयेत् ॥ २५ ॥
तद्गोलके क्षिपेद्वज्रं रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
एवं सप्तपुटं कृत्वा कुलिशं म्रियते ध्रुवम् ॥ २६ ॥

तीन वर्षकी कपासकी जडको पीसकर तीन वर्षकी नागवेलके रससे लुगदी बनावे उसमें हीरेको रख कपडमिट्टी कर गजपुटकी आग दे । ऐसे सात बार फूंकनेसे हीरेकी भस्म होजाती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

कांस्यपात्रे तु भेकस्य मूत्रे वज्रं सुभावयेत् ।
त्रिःसप्तकृत्वः संतप्तं वज्रमेवं मृतं भवेत् ॥ २७ ॥

कांसीके बर्तनमें मेंढकका मूत भरदे फिर हीरेको तपातपाकर इक्कीस बार बुझानेसे भस्म होजाती है ॥ २७ ॥

अथ वज्रभस्म ।

त्रिःसप्तकृत्वः संतप्तं खरमूत्रेण सेचयेत् ।
मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा तद्गोले कुलिशं क्षिपेत् ॥२८॥
प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण वै ।
भस्मीभवति तद्युक्तं वज्रवत्कुरुते तनुम् ॥ २९ ॥
आयुष्यं सौख्यजनकं बलदं रूपदं तथा ।
रोगघ्नं मृत्युहरणं वज्रभस्म भवत्यलम् ॥ ३० ॥

हीरेको इक्कीस बार तपातपाकर गधेके पेशाबमें बुझावे फिर खटमल और हरतालको पीस लुगदी बनाकर हीरेको उसमें रखदे फिर खूब प्रचंड अग्नि लगाकर पहिली रीतिसे घोडेके मूत्रमें बुझावे तो भस्म होजाय यह भस्म शरीरको वज्रवत् कठोर कर देती है आयुको बढानेवाली सुख बल और रूपको देनेवाली रोगोंको और मृत्युको जीतनेवाली यह हीरेकी भस्म अत्यन्त गुणदायक है ॥ २८-३० ॥

इति वज्रभस्म ।

अथ वैक्रांतमारणम् ।

अष्टास्त्रिरष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः ।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥ ३१ ॥

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः ॥३२॥
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः ।

आयुःप्रदः सकलबंधकरोऽतिवृष्यः
प्रज्ञाप्रदः सकलरोगसमूलहारी ।
दीताग्निकृत्पविसमानगुणस्तरस्वी ।
वैकान्तकः खलु वपुर्बललोहकारी ॥ ३३ ॥

वैक्रान्तं वज्रवच्छुद्धं ध्मातं तं हयमूत्रके ।
हितं तद्भस्म संयोज्यं वज्रस्थाने विचक्षणैः ॥ ३४ ॥

जो हीरा अष्टधार आठ फलकवाला छः कोणयुत चमकदार भारी शुद्ध मिले हुए रंगोंका होता है उसे वैक्रान्त कहते हैं श्वेत लाल पीला नीला कबूतरके रंगका श्यामल काले रंगका चित्र विचित्र अर्थात् कबरा इन आठ रंगोंका वैक्रान्त होता है यह आयु बढाने-वाला सकल बंधक बलप्रदायक बुद्धिको बढानेवाला सब रोगोंका जडसे नाश कर्त्ता जठराग्निको तेज करनेवाला स्फूर्ति और हिम्मत बढानेवाला सब शरीरको लोहके समान करडा करनेवाला है यह वैक्रान्त हीरेकी तरह शोधा जाता है अर्थात् इसको तपातपाकर घोडेके मूत्रमें भिगोनेसे भस्म होजाती है बुद्धिमान् इस हीरेको भस्मके स्थानमें योग करसकते हैं ॥ ३१-३४ ॥

इति वैक्रांतमारणम् ।

अथाभ्रकलक्षणम् ।

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रमभ्रं चतुर्विधम् ।
ध्मातं वह्नौ दलचयं पिनाकं विसृजत्यलम् ॥ ३५ ॥
फूत्कारं नागवत्कुर्याद्दर्दुरं भेकशब्दवत् ।
चतुर्थं च वरं ज्ञेयं न चाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥ ३६ ॥

तस्माद्वज्राभ्रकं ग्राह्यं व्याधिवार्धक्यमृत्युजित् ।
अशुद्धाभ्रं निहन्त्यायुर्वर्द्धयेन्मारुतं कफम् ॥ ३७ ॥
अहतं छेदयेद्गात्रं मंदाग्निकृमिवर्द्धकम् ।
अतः शुद्धाभ्रकं ग्राह्यं मंदाग्निकृमिनाशनम् ॥ ३८ ॥

काले अभ्रकके चार भेद हैं पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र अग्निमें डालनेसे पिनाक अभ्रकके दल अथवा वरक अलग २ होजाते हैं यह कुष्ठकारक है. नाग अभ्रक अग्निमें डालनेसे सांपकीसी फुंकार देता है यह भगंदर रोग पैदा करता है और दर्दुर अभ्रक अग्निमें डालनेसे मेंडककासा शब्द करता है यह मृत्युकारक है अब चौथा वज्राभ्रक अग्निमें डालनेसे जैसाका वैसाही रहता है अर्थात् विकारको प्राप्त नहीं होता इसलिये वह सबमें श्रेष्ठ है इसी हेतु व्याधि बुढापा और मृत्युको जीतनेवाले वज्राभ्रकको ग्रहण करे. अशुद्ध अभ्रक आयुको क्षीण कर देता है और वात और कफको बढाता है और बिना मरा-हुआ शरीरको फोड देता है अर्थात् सब देहमें फोडे निकल आते हैं मंदाग्नि और कृमिको बढानेवाला है अतएव उपरोक्त रोगोंके नाशके लिये शुद्ध किये हुए अभ्रकका प्रयोग करे ॥ ३५-३८ ॥

धान्याभ्रककरणविधिः ।

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बध्वाऽथ कंबले ।
त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेद्दृढम् ॥ ३९ ॥
कंबलाद्गलितं श्लक्ष्णं वालुकारहितं च यत् ।
तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तं सद्भिर्देहस्य सिद्धये ॥ ४० ॥

अभ्रक और उसके चतुर्थांश धानको तुष दोनोंको कंबलमें बांधदे फिर तीन दिनतक पानीमें भिगोवे जब अच्छी तरह भीगजाय तब गीलेहीको उसी पानीमें खूब मर्दन करे कि कंबलसे उसका सब

कूडा कर्कट निकलकर स्वच्छ हो जाय इसीको धान्याभ्रक कहते हैं देहकी सिद्धिमें उपयोगी है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथाभ्रकशोधनम् ।

अथवा वदरीक्काथे ध्मातमभ्रं विनिःक्षिपेत् ।
मर्दितं पाणिना शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥४१॥

दूसरी विधि–अभ्रको तपातपाकर बेरीके काढेमें वारंवार बुझावे फिर सुखाकर हाथसे खुब मर्दन करनेपर अभ्रक धान्याभ्रकसेभी उत्तम होजाता है ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

धमेद्वज्राभ्रकं वह्नौ ततः क्षीरेण सेचयेत् ।
भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा मेघनादाम्लयोर्द्रवैः ।
भावयेदष्टयामं तद्धान्याभ्रं कारयेत्सुधीः ॥ ४२ ॥

वज्राभ्रकको तपातपाकर वारंवार गौके दूधमें बुझावे फिर उसके दल (वरक) अलग करके चौलाई और खटाईके द्रावमें आठ पहरतक भावना दे तौ धान्याभ्रक शुद्ध होजाय ॥ ४२ ॥

इत्यभ्रकशोधनम् ।

अथाभ्रमारणम् ।

धान्याभ्रकस्य भागैकं द्वौ भागौ टंकणस्य च ॥४३॥
पिष्ट्वा तदंधमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत् ।
स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४४ ॥

धान्याभ्रक एक भाग और सुहागा दो भाग दोनोंको पीस अंधमूषामें रख मुँह बन्दकर तेज आगमें धरदे जब ठंढा होजाय तब उसको निकाल चूर्ण कर औषधियोंके योगमें काम लावे॥४३॥४४॥

धान्याभ्रकं दृढं मर्द्यमर्कक्षीरे दिनावधि ।
वेष्टयेद्वातुपत्रैश्च चक्राकारं तु कारयेत् ।
कुंजराख्ये पुटे पाच्यं सप्तवारं पुनः पुनः ॥ ४५ ॥
ततो वटजटाक्काथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ।
म्रियते नात्र संदेहो सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४६ ॥

दूसरी विधि-धान्याभ्रकको आकके दूधमें एक दिन खरल कर टिकिया बनाय आकके पत्तोंमें लपेटकर गजपुटकी आगमें पकावे इसी प्रकार सात वार आकके दूधमें खरल कर गजपुटका आग दे फिर बडकी जटाओंके क्वाथमें तीन भावना देनेसे निस्सन्देह अभ्रक मर-जाता है और सब काममें उपयोगके लायक होजाता है ॥४५॥४६॥

अन्यच्च ।

धान्याभ्रकं समादाय मुस्तक्काथैः पुटत्रये ॥ ४७ ॥
तद्वत्पुनर्नवाक्षीरैः कासमर्दरसैस्तथा ।
नागवल्लीरसैर्युक्तं सूर्यक्षीरैः पृथक्पृथक् ॥ ४८ ॥
दिने दिने मर्दयित्वा क्काथैर्वटजटांकुरैः ।
दत्त्वा पुटत्रयं पश्चात्रिपुटं मुसलीजलैः ॥ ४९ ॥
त्रिगोक्षुरकषायेण त्रिः पुटेद्वानरीरसैः ।
मोचाकंदरसैः पाच्यं त्रिवारं कोकिलाक्षकैः ॥ ५० ॥
रसैः पुटेत्ततो धेनुक्षीरोदकं पुटं मुहुः ।
दध्ना घृतेन मधुना स्वच्छया सितया तथा ॥ ५१ ॥
एकमेकं पुटं दद्यादभ्रस्यैव मृतिर्भवेत् ।
सर्वरोगहरं व्योम जायते योगवाहकम् ॥ ५२ ॥

कामिनीमददर्पघ्नं शस्तं पुंस्त्वोपघातिनाम्।
वृष्यमायुष्करं शुक्रवृद्धिसंतानकारकम् ॥ ५३ ॥

धान्याभ्रकको लाकर मोथेके क्वाथमें तीन पुट दे फिर इसी तरह सांठीके रसमें फिर कसौंदीके रसमें फिर पानके रसमें फिर आकके दूधमें अलग अलग एक एक दिन मर्दन कर बडकी जटाओंके क्वाथमें तीन दिन पुट देकर फिर तीन पुट मुसलीके जलमें फिर इसी तरह गोखरूके क्वाथमें, कौंचके रसमें, कदलीकन्दके रसमें और तालमखानेके तीन तीन पुट दे फिर एक पुट गौके दूधमें देकर फिर दही मक्खन शहद और सफेद मिश्रीका एक एक पुट देनेसे अभ्रक निश्चय मरजाता है सब रोगोंका नाश करनेवाला यह अभ्रक योगवाह होजाता है स्त्रियोंके मदको विध्वंस करनेवाला नपुंसकताको हरनेवाला बल वीर्य और आयुष्यको बढानेवाला संतानके हेतु हितकारी होता है ॥ ४७-५३ ॥

दुग्धत्रयं कुमार्यम्बुगंगापत्रं नृमूत्रकम्।
वटांकुरमजारक्तमेभिरभ्रं सुमर्दितम् ॥ ५४ ॥
शतधा पुटितं भस्म जायते पद्मरागवत्।
निश्चन्द्रकं भवेद्व्योम शुद्धदेहो रसायनम् ॥ ५५ ॥
निश्चन्द्रमारितं व्योम रूपं वीर्यं दृढं तनुम् ॥
कुरुते नाशयेन्मृत्युं जरारोगकदंबकम् ॥ ५६ ॥

बड थूहर और आकका दूध, घीकुवारका रस, नागरमोथा, मनुष्यका मूत्र, बडकी जटाओंका रस, बकरीका रुधिर इन सबमें अभ्रकको अच्छी तरह घोट सौ पुट देनेसे पुखराज मणिकीसी भस्म होजाती है निश्चंद्र (जिसमें कोई सफेद अभ्रककी चमक न रहे) मरा हुआ अभ्रक देहकी शुद्धि और रसायनमें उपयोगी होता है रूप

वीर्यको देनेवाला शरीरको पुष्ट करता है मृत्यु बुढापा और सब रोगोंका नाश कर्त्ता है ॥ ५४-॥ ५६ ॥

इत्यभ्रकमारणम्।

अथ हरतालशोधनम्।

अशुद्धं तालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत्।
तापस्फोटांगसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ५७ ॥
शुद्धः स्यात्तालकः स्विन्नः कूष्मांडसलिले ततः।
चूर्णोदके पृथक्तैले भस्मीभूतो न दोषकृत् ॥ ५८ ॥
तालको हरते रोगान्कुष्ठमृत्युरुजादिकान्।
संशुद्धः कांतिवीर्यं च कुरुते ह्यायुवर्द्धनम् ॥ ५९ ॥

विना शोधा हुआ हरताल आयुको क्षीण करनेवाला कफ वात प्रमेहको करनेवाला और वमन हडफूटन अंगसंकोच करनेवाला है इसलिये हरतालको शोधलेवे, पेठेके भीतर हरतालकी पोटली रखकर पचानेसे हरताल शुद्ध होजाताहै, चूनेके पानी वा तैलमें अलग अलग दोलायंत्रसे औटानेसे शुद्ध होजाता है, भस्म हुआ हरताल दोष नहीं करता है शुद्ध हरताल कुष्ठ मृत्यु आदि रोगोंका नाश करता है और कांति वीर्य व आयुको बढाता है ॥ ५७-५९ ॥

इति हरतालशोधनम्।

अथ हरतालमारणम्।

पलमेकं शुद्धतालं कौमारीरसमर्दितम्।
शरावसंपुटे क्षिप्त्वा यामान्द्वादशकं पचेत् ॥ ६० ॥
स्वांगशीतं समादाय तालकं तु मृतं भवेत्।
गलत्कुष्ठं हरेच्चैव तालकं तु न संशयः ॥ ६१ ॥

एक पल शुद्ध हरताल लेकर घीकुवारके रसमें मर्दन कर शरावसंपुटमें बन्द कर बारह पहरकी आग दे ठंढा होनेपर उतार लेनेसे

हरताल मरजाता है भाग हुआ हरताल निस्सन्देह गलत्कुष्ठको दूर करता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति हरतालमारणम् ।

अथ मनःशिलाशोधनम् ।

अगस्तिपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम् ।
शृंगवेररसैर्वापि विशुद्ध्यति मनःशिला ॥ ६२ ॥
कटुः स्निग्धा शिला तिक्ता कफघ्नी लेखनी परा ।
भूतावेशामयं हन्ति कासश्वासहरा शुभा ॥ ६३ ॥

मैनशिलको अगस्तके पत्तोंके रसकी अथवा अदरखके रसकी सात भावना देवे तो शुद्ध होजाय. मैनशिल चरपरी है, चिकनी है, कडवी है, कफको नाश करती है, लेखनी है, भूतबाधा आमय कास और श्वासको मारती है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

मारणविधि-चंदाल, आक, बड, थूहर और हंसपदी इन सबके दूधमें घोट घोटकर अग्नि देनेसे मैनशिल मरजाती है ॥

इति मनः शिलाशोधनमारणम् ।

अथ खर्परशुद्धिः ।

नृमूत्रैः खरमूत्रैश्च सप्ताहं रसकं पचेत् ।
दोलायंत्रेण संशोध्य ततः कार्येषु योजयेत् ॥ ६४॥

खपरियाको लेकर मनुष्य वा गधेके पेशाबमें सात दिनतक भावना देकर दोलायंत्रसे शुद्ध करना चाहिये तब सब कामोंमें योग करे ॥ ६४ ॥

अथ तुत्थशुद्धिः ।

ओतोर्विष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टंकणाद्विपक् ।
त्रिविधं पुटितं शुद्धं वांतिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥६५॥

तुत्थकं कटु सक्षारं कषायं विषदं लघु ।
लेखनं भेदि चक्षुष्यं कण्डूकृमिविषापहम् ॥ ६६ ॥

बिल्लीकी विष्ठाके समान नीलाथोथा ले उसमें शहद और सुहागा डालकर खरल करले फिर शरावसंपुटमें रख फूंक दे इसी प्रकार तीन बार करनेसे नीलाथोथा शुद्ध होकर वमन और भ्रांतिसे रहित होजाता है। नीलाथोथा तीखा खारी, कषैला, विषद, हलका, लेखन भेदन, नेत्रोंको हितकारक और खाज कीडे तथा विषको दूर करनेवाला है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

इति तुत्थशुद्धिः ।

अथ विमलाशुद्धिः ।

जंबीरस्य रसे स्विन्ना मेषशृंगीरसेऽथवा ।
रंभातोयेन वा पाच्यं घस्रं विमलशुद्धये ॥ ६७ ॥

जंभीरी अथवा मेंढासींगी अथवा केलाके रसमें दिनभर विमलाको पचानेसे शुद्ध होजाती है ॥ ६७ ॥

इति विमलाशुद्धिः ।

अथ माक्षिकशोधनम् ।

सिंधूद्भवस्य भागैकं त्रिभागं माक्षिकस्य च ।
कृत्वा तदायसे पात्रे लोहदर्व्याथ चालयेत् ॥ ६८ ॥
सिंदूराभं भवेद्यावत्तावन्मृद्वग्निना पचेत् ।
सभद्रं माक्षिकं विद्यात्सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ६९ ॥

एक भाग सेंधानमक और तीन भाग सोनामक्खीको ले घोटकर लोहेकी कडाईमें चढाय लोहेका दंडा वा पलटेसे चलाता रहे जब-तक उसका रूप सिंदूरकासा न होय तबतक नीचे मंदी मंदी आग देता रहे यही उत्तम सोनामक्खीका भस्म है इसका सब औषधि-योंमें प्रयोग करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

अन्यच ।

माक्षिकस्य चतुर्थांशं दत्त्वा गंधं विमर्दयेत् ।
ऊरुबूकस्य तैलेन ततः कार्या सुचक्रिका ॥ ७० ॥
शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
सिंदूराभं भवेद्भस्म माक्षिकस्य न संशयः ॥ ७१ ॥
माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्षयकुष्ठनुत् ।
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम् ॥ ७२ ॥

सोनामक्खीका चौथा हिस्सा गंधक ले दोनोंको खरल करे फिर अंडीका तेल डालकर टिकिया बनाले तब शरावसंपुटमें रख कपडमिट्टी कर गजपुटकी आगमें फूंकदे ऐसा करनेसे सोनामक्खीका सिंदूरके समान लाल भस्म होजायगा. सोनामक्खी कटु है, मधुर है, प्रमेह, बवासीर, क्षयी और कोढको दूर करै, कफ पित्तको हरे, बलकारक है और अन्य औषधियोंके योगमें उपयोगी है ॥ ७०-७२ ॥

इति माक्षिकशोधनम् ।

अथ कासीसशुद्धिः ।

सकृद्भृंगांबुना स्विन्नं कासीसं निर्मलं भवेत् ।
कासीसं शीतलं स्निग्धं स्विन्नं नेत्ररुजापहम् ॥
पित्तापस्मारशमनं रसवद्गुणकारकम् ॥ ७३ ॥

हीराकसीस एक दिन भांगरेके रसमें पचानेसे शुद्ध होजाता है। यह ठंढा, चिकना, तर, नेत्ररोगोंको दूर करनेवाला पित्त और मृगीका नाश करनेवाला, पारेके समान गुणकारक है ॥ ७३ ॥

इति कासीसशुद्धिः ।

अथ कान्तपाषाणशुद्धिः ।

लवणानि तथा क्षारौ शोभांजनरसे क्षिपेत् ।
अम्लवर्गयुते चादौ दिनमर्द्धं विभावयेत् ॥ ७४ ॥
तद्द्रवैर्दोलिकायंत्रे दिवसं पाचयेत्सुधीः ।
कांतपाषाणशुद्धौ तु रसकर्म समाचरेत् ॥ ७५ ॥

नमक तथा क्षारको सहँजनेके रसमें डालकर खटाई उसमें डालदे फिर आधे दिनतक कांतपाषाणको उसमें डालदे फिर खटाई द्वारा दोलायंत्रसे इसको दिनभर पचावे तौ कांतपाषाण शुद्ध होजाय फिर रसकर्ममें इसका योग करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

इति कांतपाषाणशुद्धिः ।

अथ वराटिकाशुद्धिः ।

पीताभा ग्रंथिलाः पृष्ठे दीर्घवृत्ता वराटिकाः ।
सार्द्धनिष्कभराः श्रेष्ठा निष्कभाराश्च मध्यमाः ॥ ७६ ॥
पादोननिष्कभाराश्च कनिष्ठाः परिकीर्तिताः ।
रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टास्ताश्चराचरसंज्ञकाः ॥ ७७ ॥
वराटा कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयात् ।
परिणामादिशूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी ॥ ७८ ॥
कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा ।
रसेन्द्रजारणे प्रोक्ता विडद्रव्येषु शस्यते ॥ ७९ ॥

पीली ऊपरको गांठदार लम्बी गोल और तोलमें छः मासेकी कौडीको रसवैद्योंने श्रेष्ठ कहा है और चार मासेकी मध्यम और तीन मासेकी कनिष्ठ कही गयी है, कौडीके दो भेद हैं, चर और अचर. कौडियां कांजीमें औटानेसे पहरभरमें

शुद्ध होजाती हैं. कौडी परिणामादि शूल संग्रहणी और क्षयीका नाश करनेवाली हैं. तीखी, गरम, दीपन, बलकारक, नेत्रोंको हित-कारक, वात और कफको नाश करनेवाली पारेके जारणमें उपयोगी और दस्तोंकी बीमारीको हितकारक हैं ॥ ७६-७९ ॥

इति वराटिकाशुद्धिः ।

अथ दरदशुद्धिः ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् ।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ८० ॥
तिक्तोष्णं हिंगुलं दिव्यं रसगंधकसंभवम् ।
मेहकुष्ठहरं रुच्यं बल्यं मेधाग्निदीपनम् ॥ ८१ ॥

हिंगलूको भेडके दूध और अम्लवर्गकी सात सात भावना देनेसे वह निश्चय शुद्ध होजाताहै इसके गुण ये हैं पारे और गंधकसे निकाला हुआ हिंगलू कटु है, गरम है, दिव्य है,प्रमेह और कोढ हर्ता, रुचि और बलकारक है, मंदाग्निको दीपन करनेवाला है॥८०॥८१॥

इति दरदशुद्धिः ।

अथ शिलाजतुशुद्धिः ।

गोदुग्धत्रिफलाभृंगद्रवैः पिष्टं शिलाजतु ।
दिनैकं लोहजे पात्रे शुद्धिमायात्यसंशयम् ॥ ८२ ॥
शिलाजतु भवेत्तिक्तं कटूष्णं च रसायनम् ।
क्षयशोषोदरार्शांसि हंति वस्तिरुजो जयेत् ॥ ८३ ॥

गौके दूध अथवा त्रिफलाके रस अथवा भांगरेके रसमें शिलाजीतको घोलकर दिनभर लोहेके पात्रमें धरा रहने देनेसे निस्सन्देह शुद्ध होजाता है इसके गुण. ये हैं कि कटु है, तिक्त है,गरम है, रसायन है, क्षय शोष उदरविकार और बवासीर नाश करनेवाला है और पेडूके सब रोगोंको दूर करता है॥ ८२ ॥ ८३ ॥

इति शिलाजतुशुद्धिः ।

अथोपरसशोधनम् ।

सौवीरं टंकणं शंखं कंकुष्ठं गैरिकं तथा ।
एते वराटवच्छोध्या भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ ८४ ॥

सौवीरांजन, सुहागा, शंख, मुरदासंग और गेरू इनकी कौडीकी रीतिसे शोधनेपर शुद्धि होजातीहै. अर्थात् सौवीरांजन त्रिफला अथवा भांगरेके रसमें औटानेसे शुद्ध होजाता है.सुहागेको जंभीरीके रसकी एक दिनरात भावना देनेसे शुद्ध होजाताहै अथवा गोबरमें रखनेसे भी कच्चा सुहागा वमन और भ्रान्ति करता है इसलिये उसको आग-पर रखकर फुलालेना आवश्यक है. शंख अम्लवर्ग अथवा कांजीमें औटानेसे शुद्ध होनेपर संग्रहणी दस्त और आंखके फूलेको दूर करता है मुरदासंग सोंठके जलमें तीन बार धोनेसे शुद्ध हो जाता है गेरूको गौके दूधमें खरल करनेसे अथवा घीमें औटानेसे शुद्ध हो जाता है विना शुद्ध किया हुआ भी प्रयोग किया जाता है,वह कुछ नुकसान नहीं पहुँचाता ॥ ८४ ॥

इत्युपरसशोधनम् ।

अथ भूनागसत्त्वम् ।

सद्यो भूनागमादाय चारयेच्छिखिनं बुधः ।
अथवा कुक्कुटं वीरं कृत्वा मन्दिरमाश्रितम् ॥८५॥
मल मूत्रं गृहीत्वा च संत्यज्य प्रथमांशकम् ।
आलोड्य क्षीरमध्वाज्यैर्घर्मेतत्सत्त्वार्थमादरात् ॥८६ ॥
मुञ्चन्ति ताम्रवत्सत्त्वं तन्मुद्राजलपानतः ।
नश्यन्ति जंगमाविषाण्यशेषाणि न संशयः ॥ ८७ ॥

वाजी केचुए (गिंडोये) लाकर किसी मोर अथवा मुर्गेको पेट भरकर खवादे और उसको होशयारीसे मकानके भीतर वा पिंजरेमें रक्खे और उसकी बींट वा मूत्रको इकट्ठा करले परन्तु उसके पहिले अंशको छोडदे उस मल मूत्रको दूध शहद घीमें मिलायकर सत्त्वके हेतु बंकनालसे धोंकनेपर तांबेकासा सत्त्व निकलता है उसकी अंगूठी बनाकर पहरनेसे अथवा उसका धुआ हुआ जल पीनेसे सब जंगम विष दूर होजाते हैं नीलाथोथेका सत्त्व गिंडोयेका तांबा और सुवर्ण बराबर लेकर अंगूठी बनावे ॥ ८२–८७ ॥

इति भूनागसत्त्वम् ।

अथ वैक्रान्तसत्त्वम् ।

वैक्रान्तं वज्रकंदं च पेषयेद्भ्रववारिणा ॥ ८८ ॥
माहिषं नवनीतं च सक्षौद्रं पिंडितं ततः ।
शोषयित्वा धमेत्सत्त्वमिन्द्रगोपसमं भवेत् ॥ ८९ ॥

वैक्रान्त और थूहरकी जडको दूधमें घोटकर भैंसका घी और शहद मिलाकर गोला बनावे फिर सुखाकर उसको प्रचण्ड आगसे धोंके तो बीरबहूटीके समान लाल सत्त्व होय ॥ ८८ ॥२९॥

इति वैक्रान्तसत्त्वम् ।

अथाभ्रकसत्त्वम् ।

भावितं चूर्णितं त्वभ्रं दिनैकं कांजिकेन च ।
रम्भासूरणजैर्नीरैर्मूलकोत्थैश्च मर्दयेत् ॥ ९० ॥
तुर्यांशं टंकणेनेदं क्षुद्रमत्स्यैः समं पुनः ।
माहिषीमलसंमिश्रं विधायास्यायगोलकम् ॥ ९१ ॥
खराग्निना धमेद्गाढं सत्त्वं मुंचति कान्तिमत् ।
सत्त्वसेवी वयःस्तम्भं कृतशुद्धिर्लभेत्सुधीः ।
अगस्तिपुष्पनिर्यासमर्दितं सूरणोदरे ॥ ९२ ॥

अभ्रककी भस्मको कांजीमें दिनभर भावना देकर फिर केलाकी जड और जमीकन्दके रसकी भावना देकर इससे चौथा सुहागा और छोटी, मछली मिलाय भैंसके गोबरके संग इसका गोला बनावे फिर तेज आगसे इसको धमावे तो चमकदार सत्त्व निकले जो मनुष्य शुद्ध किये हुए इस सत्त्वका सेवन करता है उसकी आयुष्य बडी होती है ॥ ९०–९२ ॥

इत्यभ्रकसत्त्वम् ।

अथाभ्रकद्रावणम् ।

अगस्तिपुष्पनिर्यासमर्दितं सूरणोदरे ।
गोष्ठभूस्थं नभो मासं जायते जलसन्निभम् ॥ ९३ ॥

अगस्तके फूलके रसमें अभ्रकको मर्दन कर जमीकन्दके भीतर गोला बनाकर भरदे फिर गोशालामें उसको गाडदे और महीनेभर पीछे निकाले तो अभ्रक जलके समान पतली होजाती है ॥ ९३ ॥

इत्यभ्रकद्रावणम् ।

अथ सर्वसत्त्वनिपातवधिद्धिः ।

गुडं पुरस्तथा लाक्षा पिण्याकं टंकणं तथा ।
ऊर्णा सर्जरसं चैव क्षुद्रमीनसमन्वितम् ॥ ९४ ॥
एतत्सर्वं तु संचूर्ण्य छागीदुग्धेन पिंडिकाम् ।
कृत्वा ध्माता खरांगारैः सर्वसत्त्वानि पातयेत् ॥ ९५ ॥
पाषाणमृत्तिकादीनि सर्वलोहगतानि च ।
अन्यानि यान्यसाध्यानि व्योमसत्त्वस्य का कथा ॥ ९६ ॥
यदोपरसभागोस्ति रसे तत्सत्त्वयोजनम् ।
कर्तव्यं तद्गुणाधिक्यं रसज्ञत्वं यदीच्छसि ॥ ९७ ॥

गुड, गुग्गुल, लाख, खल, सुहागा, ऊन, राल और छोटी मछली इन सबको पीसकर बकरीके दूधमें गोला बांध सुखाकर बंकनालसे धौंकनेपर सत्त्व निकल आता है. उपरोक्त वस्तुओंके संग जिसका सत्त्व निकालना होय उसकोभी मिलादे. ऐसा करनेपर पत्थर मिट्टी और लोहगत धातु तथा अन्यान्य जिनका सत्त्व निकालना बडा कठिन है उनकाभी सत्त्व निकल आता है. अभ्रकका सत्त्व निकालना तो कुछ बडी बातही नहीं है. जहां कहीं किसी औषधिमें कोई उपरसका भाग लिखा हो वहां पारेमें उस उपरसका सत्त्व डालनेसे उसके गुणोंको बहुत बढा देताहै ॥ ९४-९७ ॥

इति सत्त्वपातनम् ।

अथ मणिशोधनम् ।

शुद्ध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयंत्या मौक्तिकं तथा ।
विद्रुमं क्षारवर्गेण ताक्ष्र्यं गोदुग्धतस्तथा ॥ ९८ ॥
पुष्परागं च सधानैः कुलत्थकाथसंयुतैः ।
तंदुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन च ।
रोचनाभिश्च गोमेदं वैडूर्यं त्रिफलाजलैः ॥ ९९ ॥

नीचे लिखेहुए रत्न दोलायंत्रद्वारा शुद्ध होजाते हैं अम्लवर्गसे माणिक, अरनीके रससे मोती, क्षारवर्गसे मूंगा और गौके दूधसे पन्ना, सेंधानोन और कुलथीके काथमें पुखराज, चौलाईके रससे हीरा, नीलके रससे नीलम, गोमेद गोरोचनके जलमें, त्रिफलाके जलसे वैडूर्य शुद्ध होता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

इति मणिशोधनम् ।

अथ मणिमारणम् ।

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलागंधकतालकैः ॥ १०० ॥
वज्रं विनाऽन्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ।
मुक्ताविद्रुमवज्रेन्द्रवैडूर्यस्फटिकादिकम् ॥ १०१ ॥
मणिरत्नं सरं शीतं कषायं स्वादु लेखनम् ।
चक्षुष्यं धारणात्तं तु पापालक्ष्मीविषापहम् ॥ १०२ ॥

मैनशिल, गंधक और हरतालको बडहरके रसमें पीसकर आठ २ पुट देनेसे सब रत्न भस्म होजाते हैं, हीराको छोडकर मोती, मूंगा, हीरा वैडूर्य, स्फटिक, मणि और रत्न दस्तावर हैं, शीतल हैं, कसेले हैं, मिष्ट हैं, लेखन हैं, नेत्रोंको हितकारक हैं और पहरनेसे पाप और अलक्ष्मी और विषको दूर करते हैं॥ १००-१०२॥ इति मणिमारणम् ।

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यामुपरसशोधनमारणकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ विषलक्षणानि ।

अष्टादशविधं ज्ञेयं कन्दजं परिकीर्तितम् ।
कालकूटं मयूराख्यं बिन्दुकं सक्तुकं तथा ॥ १ ॥
वालुकं वत्सनाभं च शंखनाभं सुमंगलम् ।
शृंगी मर्कटकं मुस्तं कर्दमं पुष्करं शिखी ।
हारिद्रं हरितं चक्रं विषं हालाहलाह्वयम् ॥ २ ॥

कंदजविष १८ प्रकारका है (यह कन्दरूप प्रगट हुआ है विषोंमें उत्तम है) कालकूट १ मयूर २ बिन्दु ३ सक्तुक ४ वालुक ५

वत्सनाम ६ शंखनाम ७ सुमंगल ८ शृंगी ९ मर्कट १० मुस्त ११ कर्दम १२ पुष्कर १३ शिखी १४ हारिद्र १५ हरित १६ चक्र १७ और १८ हालाहल ॥ १ ॥ २ ॥

घनं रूक्ष च कठिनं भिन्नांजनसमप्रभम् ॥ ३ ॥
कन्दाकारं समाख्यातं कालकूटं महाविषम् ।
मयूराभं मयूराख्यं बिन्दुवद्विन्दुकः स्मृतः ॥ ४ ॥
चित्रमुत्पलकन्दाभं सक्तुकं सक्तुवद्भवेत् ।
वालुकं वालुकाकारं वत्सनाभं तु पांडुरम् ॥ ५ ॥
शंखनाभं शंखवर्णं शुभ्रवर्णं सुमंगलम् ।
घनं गुरु च निबिडं शृंगाकारं तु शृंगिकम् ॥ ६ ॥
मर्कटं कपिवर्णाभं मुस्ताकारं तु मुस्तकम् ॥
कर्दमं कर्दमाकारं सितपीतं च कर्दमम् ॥ ७ ॥
पुष्करं पुष्कराकारं शिखी शिखिशिखाप्रभम् ।
हारिद्रकं हरिद्राभं हरितं हरितं स्मृतम् ॥ ८ ॥
चक्राकारं भवेच्चक्रं नीलवर्णं हलाहलम् ।
ब्राह्मणः पांडुरस्तत्र क्षत्रियो रक्तवर्णकः ॥ ९ ॥
वैश्यः पीतप्रभः शूद्रः कृष्णाभो निन्दितः स्मृतः ।
ब्राह्मणो दीयते रोगे क्षत्रियो विषभक्षणे ।
वैश्यो व्याधिषु सर्वेषु सर्पदष्टाय शूद्रकम् ॥ १० ॥

घना रूखा कडा अंजनके समान नीला कन्दवत् आकारवालेको कालकूट महाविष कहते हैं १, मोरकेसे रंगका मयूराख्य है, २ बिन्दुसा बिन्दुक है, ३ जो चित्रवर्ण कमलके कन्दके समान होता है

वह और सत्तूके समान हो उसे सक्तुक कहते हैं, ४ वालुक वालूके रंगका, ५ पीले रंगका वत्सनाम, ६ शंखके रंगका शंखनाम, ७ सुफेद रंगका सुमगंल, ८ घना भारी कडा और सींगके आकारवाला शृंगी, ९ बन्दरकेसे रंगका मर्कट, १० नागरमोथाके समान मुस्तक, ११ कीचकेसे रंगका सफेद पीला और मैला कर्दम, १२ नीले कमलके रंगका पुष्कर, १३ मुर्गेके रंगका शिखी, १४ हलदीके रंगका हारिद्रक, १५ हरे रंगका हारित, १६ चक्रके आकारका चक्र, १७ और नील वर्णका हलाहल होता है, १८ पीला और सफेद रंगका ब्राह्मण, लाल रंगका क्षत्री, पीले रंगका वैश्य और काले रंगका शूद्र होता है, ब्राह्मण वर्ण विष रोगमें, क्षत्रियवर्ण विष भक्षणमें, सब व्याधियोंमें वैश्य और सापके काटनेमें शूद्रवर्णका विष दिया जाता है ॥ ३–१० ॥

इति विषलक्षणानि ।

अथ विषमारणम् ।

समटंकणकं पिष्टं तद्विषं मृतमुच्यते ।
योजयेत्सर्वरोगेषु न विकारं करोति हि ॥ ११ ॥

विषके बराबर सुहागा डालकर घोटनेसे विष मरजाता है, फिर सब रोगोंपर देनेसे कुछ विकार नहीं करता ॥ ११ ॥

अथ विषस्य शोधनम् ।

विषभागांश्च कणवत्स्थूलान् कृत्वा तु भाजने ।
तत्र गोमूत्रकं क्षिप्त्वा प्रत्यहं नित्यनूतनम् ॥ १२ ॥
शोषयेत्त्रिदिनादूर्ध्वं कृत्वा तीव्रातपे ततः ।
प्रयोगेषु प्रयुंजीत भागमानेन तद्विषम् ॥ १३ ॥

विषके छोटे २ टुकडे कर मिट्टीके बर्तनमें रख तीन दिनतक

नित्य गायके नये मूत्रमें डालकर धूपमें रखकर तीन दिन पीछे सुखाके फिर मात्राके अनुसार इसका प्रयोग करे ॥ १२ ॥ १३ ॥

इति विषशोधनम् ।

अथ विषसेवनम् ।

विषस्य मारणं प्रोक्तमथ सेवां प्रवक्ष्यहम् ॥ १४ ॥
शरद्ग्रीष्मवसंतेषु वर्षासु च प्रदापयेत् ।
चातुर्मास्ये हरेद्रोगान् कुष्ठलूतादिकानपि ॥ १५ ॥
प्रथमे सर्षपी मात्रा द्वितीये सर्षपद्वयम् ।
तृतीये च चतुर्थे च पंचमे दिवसे तथा ॥ १६ ॥
षष्ठे च सप्तमे चैव क्रमवृद्ध्या विवर्द्धयेत् ।
सप्तसर्षपमात्रेण प्रथमं सप्तकं भवेत् ॥ १७ ॥
क्रमहानिं तथा पक्षे द्वितीयं सप्तकं विषम् ।
यवमात्रं विषं देयं तृतीये सप्तके क्रमात् ॥ १८ ॥
वृद्ध्यां हान्यां च दातव्यं चतुर्थ सप्तके तथा ।
यवमात्रं ग्रसेत्स्वस्थो गुञ्जामात्रं तु कुष्ठवान् ॥१९॥
अशीतिर्यस्य वर्षाणि वसुवर्षाणि यस्य वा ।
विषं तस्मै न दातव्यं दत्तं चेद्दोषकारकम् ॥ २० ॥
दद्देद्वै सर्वरोगेषु घृताशिनि हिताशिनि ।
क्षीराशनं प्रयोक्तव्यं रसायनरते नरे ॥ २१ ॥
ब्रह्मचर्यप्रधानं हि विषकल्पे तदाचरेत् ।
पथ्ये स्वस्थमना भूत्वा तदा सिद्धिर्न संशयः॥२२॥

विषके मारणकी विधि कह चुके अब उसके सेवनकी विधि लिखते हैं-शरद्, ग्रीष्म, वर्षा और वसंतऋतुमें विषका सेवन विधिपूर्वक करे, विषको चार महीने सेवन करनेसे कोढ और

लूतादिक सब रोग नष्ट हो जाते हैं पहिले दिन विषकी मात्रा सरसोंके बराबर ले दूसरे दिन दो सरसोंके बराबर इस प्रकार क्रमसे बढाकर सातवें दिन सात सरसोंकी बराबर ले फिर दूसरे सप्ताहमें सात सरसोंकी बराबरही प्रतिदिन खाता रहे, फिर दूसरे सप्ताह अर्थात् १४ दिनके पीछे पन्द्रहवें दिनसे घटाता जाय फिर तीसरे सप्ताहमें विषकी मात्रा जौकी बराबर दे फिर प्रतिदिन बढाता जाय, यहांतक कि चौथे सप्ताह प्रतिदिन घटाकर फिर एक जौ पर ले आवे, आरोग्य मनुष्य जौकी बराबर मात्रा ले और कोढीको एक रत्ती मात्रा दे अस्सी वर्षके बुड्ढेको और आठ बरसके बालकको अर्थात् बालक और बुड्ढेको विष न दे, देनेसे विकार पैदा करता है सब रोगोंमें इसके सेवन करनेवालेको घी और दूध हितकारक हैं इनका सेवन करनेवाला ब्रह्मचर्यसे रहे पथ्य करे और स्वस्थ चित्त रहे तो विषकल्पकी सिद्धिमें कुछ संशय नहीं है ॥ १४–२२ ॥

इति विषसेवनम् ।

मात्राधिकं यदा मर्त्यः प्रमादाद्भक्षयेद्विषम् ।
अष्टौ वेगास्तदा तस्य जायंते नात्र संशयः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य भूलकर विषकी मात्रा अधिक खाले तो निश्चय उसको आठ वेग होंगे ॥ २३ ॥

प्रथमे वेग उद्वेगो द्वितीये वेपथुर्भवेत् ।
तृतीये घोरदाहः स्याच्चतुर्थे पतनं भुवि ॥ २४ ॥

पहिले वेगमें उद्वेग (घबडाहट) दूसरेमें कम्पन, तीसरे वेगमें घोर दाह अथवा जलन चौथेमें पृथ्वीपर गिर पडना ॥ २४ ॥

फेनं तु पंचमे वेगे षष्ठे विकलता भवेत् ।
जडता सप्तमे वेगे मरणं चाष्टमे भवेत्॥ २५ ॥

पांचवें वेगमें मुखसे झाग डालना, छठेमें विकलता और सातवें वेगमें जडता (कुछ कहने सुननेका ज्ञान नहीं) और आठवें वेगमें मनुष्य मर जाता है ॥ २५ ॥

विषवेगांश्च विज्ञाय मंत्रतंत्रैर्विनाशयेत् ।
साधकानां हितार्थाय सदाशिवमुखोद्गतः ॥ २६ ॥
सर्वविषविनाशार्थं प्रोच्यते मंत्र उत्तमः ॥२७॥

इन विषके वेगोंको अच्छे प्रकार जानकर इनका निवारण तंत्रमंत्रसे करे साधकोंके हितके लिये श्रीसदाशिवके श्रीमुखसे निकले हुए सब प्रकारके विष और उनके वेगोंकी शान्तिके लिये यह उत्तम मंत्र है ॥२६॥२७॥ अथ मंत्रः ।

ओं नमो भगवते घोणेयन् हर हर दर दर पर पर तर तर बर बर वध वध वः वः लः ठः रं रं लां लां लां हरलां हर हर भवसर रां रां क्ष्रीं क्ष्रीं ह्रीं ह्रीं भगवति श्रीघोणेयन् सं सं सं वर वर रसः घ वर वर खंडच रूपहाँ वर विहंगम मानुष योगक्षेमं वद शेपारे शेपारे पपः स्वाहा ॥ २८ ॥

विषेषा स्मृतिमात्रेण नश्यन्ते गुत्यकादयः ।
सप्तजतेन तोयेन प्रोक्षयेत् कालचोदितम् ॥ २९ ॥

इस मंत्रके स्मरणमात्रसे गुत्यकादिकका नाश हो जाता है इस मंत्रको सात बार जपकर मंत्र पढा हुआ जल छिडक देनेसे विष उतर जाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

उत्तिष्ठति स वेगेन शिखाबंधेन धारयेत् ।
त्रिमंत्रितेन शंखेन दुंदुभिर्वादयेद्यदि ॥३०॥

वेगसे उठेहुएको चोटी पकडकर थामले फिर तीनवार मंत्र पढकर जो शंख और दुंदुभी बजावे तो ॥ ३० ॥

देशांतरे शरीरेऽपि निर्विषं कुरुते क्षणात् ।
विषं दृष्ट्वा यदा मंत्री मन्त्रमावर्तयेत्सकृत् ।
याति निर्विषतां दृष्ट्वा अपि मारशतानि च॥३१॥

दूरसेभी क्षणभरमें विष उतर सकता है । मंत्री जो विषको देखकर एक संग मंत्र पढता चलाजाय तो भी विष शीघ्रही उतर जाता है, यदि सौ मारनेवाले होयँ तौ भी ॥ ३१ ॥

गोघृतपानाद्धरते विविधं गरलं च वंध्यकर्कोटी ।
सकलविषदोषशमनी त्रिशूलिका सुरभिजिह्वा च ॥३२॥

वन्ध्याकर्कोटी गौके घृतके साथ पीनेसे सब विष दूर होजाते हैं इसी प्रकार त्रिशूली और गोभी भी सब विषोंको दमन कर देती है॥३२

तुत्थेन टंकणेनैव म्रियते पेषणाद्विषम् ।
अतिमात्रं यदा भुंक्ते तदाज्यं टंकणं पिबेत् ॥ ३३ ॥

नीलाथोथा और सुहागेके साथ विषको पीसनेसे विष मरजाता है अधिक मात्रा खानेसे जो विष विकार पैदा करने लगे तो घीमें सुहागा मिलाकर पी लेनेसे तत्क्षण विष दूर होजाता है ॥ ३३ ॥

न दातव्यं न भोक्तव्यं विषं वादे कदाचन ।
आचार्येण तु भोक्तव्यं शिष्यप्रत्ययकारणम् ॥३४॥

विषको विवादमें किसीको न देना चाहिये न स्वयं खाना चाहिये परन्तु आचार्यको शिष्यकी प्रतीत करानेके लिये पहिले स्वयं भक्षण करना चाहिये ॥ ३४ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां विषलक्षणसेवा-
परिहारकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथाष्टधातुशोधनमारणम् ।

हेमादिलोहकिट्टान्तं शोधनं मारणं गुणम् ।
वक्ष्ये सप्रत्ययं योगं यथागुरुमुखोत्थितम् ॥ १ ॥

सुवर्ण आदि कोटी पर्यंतका शोधन और मारण श्रेष्ठ योगोंके साथ जैसा गुरुमुखसे सुना गया है कहता हूं ॥ १ ॥

तैले तक्रे गवां मूत्रे काथे कौलत्थकांजिके ।
तप्तं तप्तं निषिंचेत्तु तत्तद्रावे तु सप्तधा ।
स्वर्णादिलोहपर्यन्तं शुद्धिर्भवति निश्चितम् ॥ २ ॥

सुवर्ण चांदी तांबा इत्यादिके पतले पत्र करके तेल मट्ठा गोमूत्र कुलथीके काढे व कांजीमें सात सात बार गरम करके बुझानेसे सब धातुओंकी निश्चय शुद्धि होजाती है ॥ २ ॥

अथ पृथक्पृथक् शोधनम् ।

शोधनं मारणं चैव कथ्यते च मयाधुना ॥ ३ ॥
मृत्तिकामातुलुंगाम्लैः पंचवासरभाविता ।
सभस्मलवणं हेम शोधयेत्पुटपाकवत् ॥ ४ ॥

अब धातुओंका शोधन और मारण कहते हैं बिजौरेके रसकी पांच बार भावना दी हुई मिट्टी भस्म और नोनसे सुवर्णको पुटपाक करके शोधे ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ हेमशोधनम् ।

शुद्धसूतसमं हेम खल्वे कुर्याच्च गोलकम् ।
अधोर्ध्वं गंधकं दत्त्वा सर्वं तुल्यं निरुध्य च ॥ ५ ॥
त्रिंशद्वनोपलैर्देयं पुटान्येवं चतुर्दश ।
निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ॥ ६ ॥

सुवर्णके बराबर शुद्ध किया हुआ पारा ले कजली कर गोला बनाय शराव संपुटमें रखदे, ऊपर नीचे गंधक रखकर मुंह बन्द कर कपडमिट्टी करदे, फिर तीस थारने उपलोंकी आगमें फूंके इसी प्रकार चौदह बार करनेसे सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होजाती है परन्तु गंधक बारबार देता रहे ॥ ५ ॥ ६ ॥

अन्यच्च ।

कृत्वा कंटकवेध्यानि स्वर्णपत्राणि लेपयेत् ।
लुंगांबुभस्मसूतेन म्रियते दशभिः पुटैः ॥ ७ ॥

सुवर्णके कंटकवेधी पत्र बनाकर बिजौरेके रस और पारेकी भस्मसे पत्रोंको लेपन करे फिर गजपुटकी आग दे इस प्रकार दश पुट देनेसे सुवर्णका भस्म होजाता है ॥ ७ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

रसस्य भस्मना वाथ रसैर्वा लेपयेद्दलम् ।
हिंगुहिंगुलसिंदूरैः शिलासाम्येन लेपयेत् ॥८॥
संमर्द्य कांचनद्रावैर्दिनं कृत्वाथ गोलकम् ।
तं भांडस्य तले धृत्वा भस्मना पूरयेद्दृढम् ॥९॥
अग्निं प्रज्वालयेद्गाढं द्विनिशं स्वांगशीतलम् ।
उद्धृत्य सावशेषं च पुनर्देयं पुटत्रयम् ॥ १० ॥
अनेन विधिना स्वर्णं निरुत्थं जायतेऽमितम् ।
एतद्रसायनं बल्यं वृष्यं शीतं क्षयादिहृत् ॥११॥

पारेका भस्म अथवा पारेसे सुवर्णके कंटकवेधी पत्रोंको लपेट-कर हींग हिंगुल सिन्दूर और मैनशिल बराबर बराबर लेकर कच-नारके रसमें दिनभर मर्दन कर गोला बनावे उस गोलेको बर्तनके भीतर रखकर खूब राख भरदे फिर उसके नीचे दो राततक बराबर गहरी आग दे फिर ठंढा होनेपर उतारके बाकी बचेहुए कचेको निकालकर फिर तीन पुट देकर अग्निपर धरदे इस प्रकार करनेसे सुवर्ण निरुत्थ भस्म होता है, यह भस्म रसायन है, बलकारक है, पुष्टिविधा-यक है, ठंढा है और क्षयादि दोषोंको दूर करनेवाला है ॥८-११॥

अन्यच्च ।

गलितस्य सुवर्णस्य षोडशांशेन सीसकम् ।
योजयित्वा समुद्धृत्य निंबुनीरेण मर्दयेत् ॥ १२ ॥
तद्गोलकसमं गंधं चूर्णं दद्यादधोपरि ।
शरावसंपुटे धृत्वा पुटेद्विंशद्वनोपलैः ।
एवं मुनिपुटैर्हेम नोत्थानं लभते पुनः ॥ १३ ॥

सुवर्णको गलाकर उसमें सोलहवां भाग सीसा मिलाकर निकाल ले फिर नींबूके रसमें उसको चार पहरतक खरल करे फिर उसके समान गंधकका चूरा ऊपर नीचे लगाकर शरावसंपुटमें धर कपडमिट्टी कर बीस आरने उपलोंकी आगमें रखदे इस प्रकार सात पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म निरुत्थ होजाती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

माक्षिकं नागचूर्णं च पिष्टमर्करसे पुनः ।
हेमपत्रं च तेनैव म्रियते क्षणमात्रतः ॥ १४ ॥
कषायतिक्तमधुरं सुवर्णं गुरु लेखनम् ।
वृष्यं रसायनं बल्यं चक्षुष्यं कांतिदं शुचि ॥ १५ ॥
आयुर्मेदोवयःस्थैर्यवाग्विशुद्धिस्मृतिप्रदम् ।
क्षयोन्मादगदार्तानां शमनं परमुच्यते ॥ १६ ॥

सुवर्णके कंटकवेधी पत्र बनाकर सोनामक्खी सीसेका चूरा आकके दूधमें खरल कर पत्रोंपर लेपदे फिर शरावसंपुटमें रख फूंकदे तो सुवर्णकी भस्म शीघ्र होजाती है, सुवर्णकी भस्मके गुण ये हैं-कसैली है, चरपरी, मीठी, भारी, लेखन, हृदयको गुणकारक, रसायन, बलकारक, नेत्रोंको हितकारक, अच्छी

कांति देनेवाली, आयु, मेदा, अवस्थाको स्थिर रखनेवाली, वाणीकी शुद्धि करनेवाली, स्मरणशक्तिको बढानेवाली, क्षय उन्माद और अन्य रोगोंसे पीडित मनुष्योंको नींद लावनेवाली है ॥१४-१६

इति सुवर्णमारणम् ।

अथ तारशोधनम् ।

भागेन क्षारराजेन द्रावितं शुद्धिमिच्छता ॥ १७ ॥

ओंगाके साथ रूपेको गलानेसे शुद्ध होजाता है ॥ १७ ॥

अथ तारमारणम् ।

तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।
मर्द्यं जंबीरजैर्द्रावैस्तारपत्राणि लेपयेत् ॥ १८ ॥
रुद्ध्वा त्रिभिः पुटैः पाच्यं पञ्चविंशद्वनोपलैः ।
म्रियते नात्र संदेहो गंधो देयः पुनः पुनः ॥ १९ ॥

चार भाग चांदी और एक भाग शुद्ध की हुई हरताल लेकर जंभीरीके रसमें घोटकर चांदीके कंटकवेधी पत्रोंको लेपदे फिर शराव-संपुट कर पचीस आरने उपलोंकी आगमें रख दे इस प्रकार तीन पुट देनेसे निस्सन्देह चांदी मरजाती है परन्तु गंधक बराबर देता रहे ॥ १८ ॥ १९ ॥

अन्यच्च ।

स्वर्णमाक्षिकगंधस्य समं भागं तु कारयेत् ।
अर्कक्षीरेण संपिष्टं तारपत्रं प्रलिप्य च ।
पुटेन जारयेत्तारं मृतं भवति निश्चितम् ॥ २० ॥

सोनामक्खी और गंधक बराबर बराबर लेकर आकके दूधमें खरल कर चांदीके कंटकवेधी पत्रोंपर लेपन करदे फिर शरावसंपुट देकर भस्म करनेसे निश्चय चांदीकी भस्म होजाती है ॥ २० ॥

अन्यच्च ।

विधाय पिष्टिं सूतेन रजतस्याथ मेलयेत् ॥ २१ ॥
तालं गंधं समं पश्चान्मर्दयेन्निंबुकद्रवैः ।
द्वित्रैः पुटैर्भवेद्भस्म योज्यमेवं रसादिषु ॥ २२ ॥

पारे और चांदीकी कजली कर बराबर बराबर गंधक और हरिताल लेकर नींबूके रसमें मर्दन करे फिर दो तीन पुटकी आग देनेसे सम्पूर्ण औषधियोंमें योग करनेके लायक भस्म होजाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

तारभस्मगुणाः ।

शीतं कषायं मधुरमम्लं वातप्रकोपजित् ।
दीपनं बलकृत्स्निग्धं गाढाजीर्णविनाशनम् ।
आयुष्यं दीर्घरोगघ्नं रजतं लेखनं परम् ॥ २३ ॥

चांदीकी भस्म ठंढी है, कसैली है, मीठी है, खट्टी है, वातको जीतनेवाली है, अग्निसंदीपन है, बलकारक है, चिकनी है अजीर्णका नाश करनेवाली है, अवस्थाको बढानेवाली है और सब रोगोंको नाश करनेवाली है और लेखन है ॥ २३ ॥

अथ ताम्रशोधनावश्यकता ।

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते ।
एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः॥२४॥

ऋषियोंने विषको विष नहीं कहा है किन्तु तांबेकोही विष कहा है विषमें तो केवल एकही दोष है परन्तु तांबेमें आठ दोष कहे गये हैं ॥ २४ ॥

अथ अष्टदोषाः ।

भ्रमो मूर्च्छा विदाहश्च स्वेदक्लेदनवांतयः ॥ २५ ॥

अरुचिश्चित्तसंताप इति दोषा विषोपमाः ।
तस्माद्विशुद्धं संग्राह्यं ताम्रं रोगप्रशान्तये ॥ २६ ॥

भ्रम, मूर्च्छा, दाह, स्वेदन, पीडा, वांति, अरुचि और चित्तसंताप ये आठ दोष विषके समान हैं इसलिये रोगकी शान्तिके हेतु शुद्ध ताम्र लेना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ ताम्रशोधनम् ।

लवणैर्वज्रदुग्धेन ताम्रपत्रं विलेपयेत् ।
अग्नौ संताप्य निर्गुंडीरसैः सिक्तं च सप्तधा ।
स्नुह्यर्कस्वरसेऽप्येवं शुल्वशुद्धिर्भविष्यति ॥ २७ ॥

नमक और थूहरके दूधसे तांबेके कंटकवेधी पत्रोंको लेपन करे फिर अग्निमें तपा तपाकर निर्गुंडीके रसमें सातवार बुझावे फिर इसी प्रकार सेहुंड और आकके रसमें बुझानेसे तांबा शुद्ध होजाता है ॥ २७ ॥

अन्यच्च ।

गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ।
शुध्यते नात्र संदेहो मारणं वाप्यथोच्यते ॥ २८ ॥

तांबेके कंटकवेधी पत्रोंको गोमूत्रमें तेज अग्निसे पहरभर पचानेसे तांबा शुद्ध हो जाता है । अब मारणविधि कहते हैं ॥ २८ ॥

अथ ताम्रमारणम् ।

सूतमेकं द्विधा गंधं यामं कन्यां विमर्दयेत् ।
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं स्थाल्यागर्भे निरोधयेत्॥२९॥
सम्यङ्मृल्लवणैः सार्द्धं पार्श्वे भस्म निधाय च ।
चतुर्यामं पचेच्चुल्ल्यां पत्रपृष्ठे सगोमये ॥ ३० ॥

जलं पुनः पुनर्देयं स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ।
म्रियते नात्र संदेहः सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३१ ॥

एक भाग पारा और दो भाग गंधक लेकर पहरभर ग्वारपाठेके रसमें मर्दन करे और दोनोंके समान तांबेके पत्र लेकर थालीसे ढकदे चारों ओर राख भरदे और उसके पास भी रखदे इस तरह गोबरसे ढके हुए तांबेके पत्रोंको चार पहरतक अग्नि दे ऊपरसे बारबार जल डालता रहे फिर ठंढा होनेपर उतारले तो तांबा सब योगोंके योग्य निस्संदेह मरजाता है ॥ ३०-३१ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

चतुर्थांशेन सूतेन ताम्रपत्राणि लेपयेत् ।
अम्लपिष्टं द्विगुणितमधोर्ध्वं दापयेद्बलिम् ॥ ३२ ॥
चांगेरीकल्कगर्भे तद्भांडे यामं पचेद्दृढम् ।
भस्मीभूतं ताम्रपात्रं सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३३ ॥

तांबेसे चौथाई भाग पारा लेकर तांबेके पत्रोंपर चढा दे और दूनी इमलीके साथ पिसी हुई गंधक उसके ऊपर नीचे रखदे फिर चांगेरीकी लुगदीके बीचमें इसको रखकर मिट्टीके बर्तनमें पहरभर दृढ अग्निसे पचावे तो सम्पूर्ण प्रयोगके योग्य तांबेकी भस्म होजाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

जंबीररससंपिष्टं रसगंधकलेपितम् ।
शुल्वपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पञ्चताम् ॥ ३४ ॥

जंभीरीके रसमें पारे और गंधककी कजली कर तांबेके कंटकवेधी पत्रोंपर लेपन कर शरावसंपुट कर तीन पुटकी आग देनेसे तांबेकी भस्म होजाती है ॥ ३४ ॥

ताम्रभस्मगुणाः ।

ताम्रं तिक्ताम्लमधुरं कषायं शीतलं परम् ॥ ३५ ॥
कफपित्तक्षयं धातुकुष्ठघ्नं च रसायनम् ।
नाशयेच्छूलमर्शांसि वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३६ ॥

तांबेकी भस्म चरपरी है, खट्टी है, मधुर है, कसैली है, बहुत शीतल है, कफपित्तको नाश करनेवाली है और धातुगत कुष्ठको दूर करती है, रसायन है और शूल और बवासीरके वास्ते ऐसी है जैसे वृक्षके लिये बिजली ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ कांस्यपित्तलमारणम् ।

राजरीतिस्तथाघोषं ताम्रवन्मारयेत्पृथक् ।
ताम्रवच्छोधनं तेषां ताम्रवद्गुणकारकम् ॥ ३७ ॥

पित्तल और कांसीका तांबेकी रीतिसे मारण करे और तांबेहीकी रीतिसे शुद्धि करे तो ये तांबेहीके समान गुणकारक हैं ॥ ३७ ॥

इति कांस्यपित्तलमारणम् ।

अथ नागवंगशोधनम् ।

नागवंगौ च गलितौ रविदुग्धेन सेचयेत् ।
त्रिवारं शुद्धिमायाति सच्छिद्रे हंडिकांतरे ॥ ३८ ॥

सीसा वा रांगको गलाकर आकके दूधमें तीन बार बुझानेसे शुद्ध हो जाते हैं परन्तु हांडी छेददार होनी चाहिये उसमें दूध भरकर गले हुए सीसे वा रांगको गेरता रहे ॥ ३८ ॥

इति नागवंगशोधनम् ।

अथ नागमारणम् ।

त्रिभिः कुम्भपुटैर्नागो वासास्वरसमर्दितः ।
सा शिला भस्मतामेति तद्रजः सर्वमेहजित् ॥ ३९ ॥

सीसा और मनसिलको अडूसेके रसमें घोटकर तीन बार गजपुटकी आग देनेसे भस्म हो जाती है और यह भस्म सब प्रकारके प्रमेहोंको दूर करनेवाली होती है ॥ ३९ ॥

अथान्यः प्रकारः।

भूभुजंगमगस्तिं च पिष्ट्वा पात्रं विलेपयेत्।
तद्रसं विद्रुते नागे वासापामार्गसंभवम् ॥ ४० ॥
क्षारं विमिश्रयेत्तत्र चतुर्थांशं गुरूक्तितः।
प्रहरं पाचयेच्चुल्ल्यां वासादर्व्यां च घट्टिता ॥४१॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं वासानीरे विमर्दयेत्।
पुटेत्पुनः समुद्धृत्य तेनैव परिमर्दयेत् ॥ ४२ ॥
एवं सप्तपुटं नागं सिंदूरं जायते ध्रुवम्।
तारस्यो रंजनो नागो वातपित्तकफापहः।
ग्रहणीकुष्ठमेहार्शःप्राणशोषविषापहः ॥ ४३ ॥

केंचुए और अगस्तके पत्तोंको पीसकर एक पात्रमें लेप कर दे और उसमें सीसा डालकर चूल्हेपर रखदे सीसेके पिघलनेपर अडूसे और ओंगाकी भस्म सीसेसे चौथाई लेकर उसमें डालता जाय और अडूसेकी एक लकडीसे सीसेको चलातारहे, पहरभर पीछे उतारकर उसको अडूसेके रसमें मर्दन करे फिर पुट देकर भस्म करे और फिर भी अडूसेके रसमें मर्दन करे इस प्रकार सात पुट देनेसे सीसेकी लाल भस्म होजाती है सीसा वात पित्त और कफको दूर करता है, संग्रहणी, कोढ, प्रमेह, बवासीर, प्राणशोष और विषको दूर करता है ॥ ४०-४३ ॥

इति नागमारणम्।

अथ वंगमारणम्।

आभीरं शोधयेदादौ द्रावयेद्धंडिकांतरे।
अपामार्गचतुर्थांशं चूर्णितं मेलयेत्ततः ॥ ४४ ॥
स्थूलाग्रया लोहदर्व्या शनैस्तदवचालयेत्।
यावद्भस्मत्वमायाति तावन्मर्द्य च पूर्ववत् ॥ ४५ ॥
तत एकीकृतं सर्वं भवेदंगारवर्णकम्।
नूतनेन शरावेण रोधयेदंतरे भिषक्।
पश्चात्तीव्राग्निना पक्वं वंगभस्म भवेद्ध्रुवम् ॥४६॥

प्रथम रांगको शोधकर फिर हांडीमें रखकर उसको गलावे फिर उसका चतुर्थांश ओंगाकी भस्म उसमें डालता जाय और लोहकी कलछीसे धीरे धीरे चलाता रहे जबतक भस्म न हो पहलेकी तरह चलाता रहे फिर लाल रंग होनेपर सबको इकट्ठा कर नये सरावसंपुटमें रख प्रचंड आगसे पचानेपर वंग भस्म होजाता है ॥४४-४६॥

अन्यच्च।

वंगं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन तं पुटेत्।
शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कैः सप्तधा भस्मतां व्रजेत्॥४७॥
वंगं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपनम्।
मेहश्लेष्मामयघ्नं च कृमिघ्नं मोहनाशनम् ॥ ४८ ॥

आकके दूधमें पिसीहुई गंधकके पुटमें वंगको रखदे ऊपरसे सूखे पीपलकी छालका चूरा डालता जाय ऐसे सात बार करनेसे वंग भस्म होजाता है वंगभस्म चरपरी है, गरम है, रूक्ष है, कुछ वातको प्रकोप

करनेवाली है, प्रमेह और श्लेष्माको दूर करनेवाली है, कीडोंको दूर करती है, मूर्च्छाको छुडाती है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति वंगमारणम् ।

अथ लोहशुद्धिः ।

त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफला षोडशं पलम् ।
तत्क्वाथे पादशेषे तु लोहस्य पलपंचकम् ॥ ४९ ॥
कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत् ।
एवं प्रलीयते दोषो गिरिजो लोहसंभवः ॥ ५० ॥

सोलह तोले हरड बहेडे आँवलेको ४८ तोले पानीमें मरके अग्निपै चढादे चौथाई रहनेपर उतारले फिर पांच तोले लोहेके पत्र गरम करके उसमें सात वार बुझानेसे लोहेमें जो गिरिजदोष है वह नष्ट होजाताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इति लोहशुद्धिः ।

अथ लोहमारणम् ।

शुद्धस्य सूतराजस्य भागो भागद्वयं बलेः ।
द्वयोः समं सारचूर्णं मर्दयेत्कन्यकांबुना ॥ ५१ ॥
यामद्वयं ततो गोलं स्थापयेत्ताम्रभाजने ।
आच्छाद्यैरंडजैः पत्रैरुष्णो यामद्वयं भवेत् ॥ ५२ ॥
त्रिदिनं धान्यराशिस्थं तं ततो मर्दयेद्दृढम् ।
रजस्तद्वस्त्रगलितं नीरे तरति हंसवत् ॥ ५३ ॥
तीक्ष्णं मुंडं कांतलोहं निरुत्थं जायते मृतम् ।
त्रिफला मधु संयुक्तमेतत्सेव्यं रसायनम् ॥ ५४ ॥

शुद्ध पारा एक भाग और गंधक दो भाग और दोनोंकी बराबर अथवा तीन भाग लोहा लेकर ग्वारपाठेके रसमें दो पहरतक खरल करे फिर गोठा बनाकर तांबेके बर्तनमें रखदे ऊपरसे अरंडके पत्तोंसे ढककर दो पहरतक धूपमें रहनेदे फिर तीन दिनतक उसे धानकी राशिमें गडा रहनेदे फिर इसको खरल कर कपडेमें छानले तो यह भस्म पानीपर हंसकी तरह तैरने लगे इसी प्रकार कांत तीक्ष्ण-और मुंडलोहकी भस्म होजाती है इसको त्रिफला और शहदके साथ सेवन करनेसे बडी गुणकारक है ॥ ५१-५४ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णस्य मेलयेत् ।
कन्यानीरेण संमर्द्य यामयुग्मं तु तत्पुटेत् ।
पुटेदेवं लोहचूर्णं सप्तधा मारणं व्रजेत् ॥ ५५ ॥

पोलाद लोहेका बारहवां हिस्सा सिंदूर मिलाकर घीकुवारके रसमें दो पहरतक खरल करे फिर शरावसंपुट कर गजपुटकी आग दे इस प्रकार सात वार पुट देनेसे लोहेकी भस्म हो जाती है ॥५५॥

अन्यच्च ।

काकोदुंबरिकानीरे लोहपत्राणि सेचयेत् ।
तप्ततप्तानि षड्वारं कुट्टयेत्तदुलूखले ॥ ५६ ॥
तत्पंचमांशं दरदं क्षिप्त्वा सर्वं विमर्दयेत् ।
कुमारीनीरतस्तीक्ष्णं पुटे गजपुटे तथा ॥ ५७ ॥
त्रिवारं त्रिफलाक्वाथैस्तत्संख्याकैरतंद्रितः ।
एवं चतुर्दशपुटैर्लोहं वारितरं भवेत् ॥ ५८ ॥

कठूमरके रसमें गरम गरम लोहेके पत्रोंको बुझाकर ऊखलमें कूट ले फिर उसमें पांचवां हिस्सा सिंगरफ मिलाकर सबको खरल

करे ग्वारपाठेका रस मिलाता रहे इस प्रकार गजपुटकी तीन तेज आग देवे फिर तीनही बार त्रिफलाके काथमें खरल करे इस प्रकार चौदह पुट देनेसे लोहा पानीमें तैरनेके योग्य होजाता है ॥ ५६–५८॥

अन्यच ।

तिंदूफलस्य मज्जायां खड्ग लिप्त्वाऽऽतपे खरे ।
धारयेत्कांस्यपात्रेण दिनैकेन पुटत्यलम् ॥ ५९ ॥
लेपं पुनः पुनः कुर्याद्दिनान्ते तत्प्रपेपयेत् ।
त्रिफलाकाथसंयुक्तं दिनैकेन मृतिर्भवेत् ॥ ६० ॥

तिन्दूफलके गूदेसे लोहेके पत्रको लेपन करके कांसीके पात्रमें रखकर तेज धूपमें सुखा लेवे फिर इस तरह दिनमें बारबार लेप करता रहे सायंकालको त्रिफलाके काथके साथ खरल करके फिर गजपुटकी आग देनेसे एकही दिवसमें भस्म होजाता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

अथान्यः प्रकारः ।

लोहं पत्रमतीव तप्तमसकृत्क्काथे क्षिपेत्रैफले
चूर्णीभूतमतो भवेत्त्रिफलजे काथे पचेद्गोजले ।
मत्स्याक्षीत्रिफलारसेन पुटयेद्यावन्निरुत्थं भवेत्
पश्चादाज्यमधुप्लुतं सुपुटितं शुद्धं भवेदायसम् ६१॥

लोहेके पत्र बहुत गरम करके त्रिफलेके काथमें बुझावे और त्रिफलेके काथमें खरल करके गोमूत्रमें पचावे और मछेछी और त्रिफलेके रसमें उसको जबतक भावना दे तबतक निरुत्थ होय फिर घी और शहदमें लपेटकर पुट देनेसे लोहा शुद्ध होजाता है ॥ ६१॥

भस्मपरीक्षा ।

सर्वमेतन्मृतं लोहं ध्मातव्यं मृतपंचके ॥ ६२ ॥
यद्येवं स्यान्निरुत्थानं सत्यं वारितरं भवेत् ।

गंधकं तुल्यकं लोहं तुल्यं खल्ने विमर्दयेत् ॥ ६३ ॥
दिनैकं कन्यकाद्रावै रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
इत्येवं सर्वलोहानां कर्त्तव्यंथ निरुत्थितः ॥ ६४ ॥

इस सम्पूर्ण लोहेकी भस्मको मृतपंचकमें बुझावे जो निरुत्थ होजाय तो सत्यही पानीमें तैरनेके योग्य होय गंधक नीलाथोथा और इनके समान लोहेको ग्वारपाठेके रसमें खरल कर कपडमिट्टी कर गजपुटकी आग दे ऐसा करनेसे लोहा निरुत्थ होजाता है ॥ ६२–६४॥

तस्य गुणाः ।

कृष्णायसोऽथ शूलार्शःकुष्ठपांडुत्वमेहनुत् ।
वयःस्थं गुरु चक्षुष्यं सर्वमेदोगदापहम् ॥ ६५ ॥
आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्त्ता रोगस्य हन्ता मदनस्य
भर्ता । अयःसमानं नहि किंचिदन्यद्रसायनं
श्रेष्ठतमं हि जंतोः ॥ ६६ ॥

काला लोहा शूल, बवासीर, कोढ पीलिया और प्रमेहको दूर करता है, अवस्थाको बढानेवाला, भारी, नेत्रोंको हितकारक, दस्तकारक और मेदाके रोगोंका नाश करनेवाला है. आयु, बल और बीर्यके बढानेवाले रोगोंको दूर करनेवाला, कामको उत्तेजित करनेवाला लोहेकी भस्मके समान प्राणियोंको हितकारक और कोई रसायन नहीं है ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

इति लोहमारणम् ।

तस्य पथ्यापथ्यावोधिः ।

कूष्मांडं तिलतैलं च माषान्नं राजकं तथा ।
मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ६७ ॥

पेठा और काशीफल, तिलतेल, उडद, राई, मदिरा और खटाईकी चीजें लोहेके सेवन करनेवाला छोडदे ॥ ६७ ॥

किट्टग्रहणम् ।

ये गुणा मारिते मुंडे ते गुणा मुंडकिट्टके ।
तस्मात्सर्वत्र मंडूरं रोगशान्त्यै नियोजयेत् ॥ ६८ ॥

जो गुण मरे हुए मुंडमें हैं वेही गुण मुंडकिट्टमें हैं इसी कारण सब रोगोंकी शान्तिके निमित्त मंडूरहीका योग करना चाहिये ॥ ६८ ॥

शतोत्थमुत्तमं किट्टं मध्यमाशीतिवार्षिकम् ।
अधमं षाष्टिवार्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥ ६९ ॥

सौ वर्षकी कीट्टी उत्तम और अस्सी वर्षकी मध्यम साठ वर्षकी अधम और इससे कमकी विषके समान होती है ॥ ६९ ॥

दाधाक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ॥ विचूर्ण्य लीढंमधुनाचिरेणनृणांक्षयंपांडुगदं निहन्ति ॥ ७० ॥

बहेडेके कोयलोंमें कीटीको अच्छी तरह गरम करके गोमूत्रमें आठ बार बुझावे फिर पीसकर शहदके संग चाटे तो थोडेही दिनोंमें मनुष्योंका क्षयी और पीलिया रोग दूर होजाय ॥ ७० ॥

किट्टाद्दशगुणं मुंडं मुंडात्तीक्ष्णं शताधिकम् ।
तीक्ष्णाल्लक्षगुणं कांतं भक्षणात्कुरुते गुणम् ॥ ७१ ॥

कीटीसे दशगुणा मुंडलोहमें और मुंडसे सौ गुना तीक्ष्ण लोहमें और तीक्ष्णसे लाखगुना गुण कांतलोहमें है यह मनुष्योंके लिये गुणकारक है ॥ ७१ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां स्वर्णाद्यष्टधातुशोधनमारणसेवनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

क्षीराब्धेरुत्थितं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।
वन्दे धन्वन्तरिं नित्यं नानागदनिषूदनम् ॥ १ ॥

क्षीरसमुद्रनिवासी भगवान् पीतांबरधारी चतुर्भुज, नानाप्रकारके रोगोंको नाश करनेवाले धन्वन्तरि महाराजको नित्य प्रणाम करताहूं ॥ १ ॥

यथागुरुमुखं श्रुत्वा सानुभूतं च यद्रसम् ।
स रसः प्रोच्यते ह्यत्र व्याधिनाशनहेतवे ॥ २ ॥

जैसे गुरुके मुखसे सुने और अनुभव किये हुए (अजमाये हुए) रस रोगोंको दूर करनेके लिये इस जगह लिखे गये हैं ॥ २ ॥

मुक्त्वैकं रसवैद्यं च लाभपूजायशस्विनम् ।
तृणकाष्ठौषधैर्वैद्यः को लभेत वराटिकाम् ॥ ३ ॥

लाभ, पूजा और यशके भागी रसोंके जाननेवाले वैद्यको छोडकर कौनसा वैद्य तिनुकेके और काष्ठकी औषधियोंसे एक कौडीभी प्राप्त करसकता है ॥ ३ ॥

यस्य रोगस्य यो योगो मुनिभिः परिकीर्त्तितः ।
तत्तद्योगसमायुक्तं भिषक् सूतं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

महर्षियोंने जिस रोगपर जो औषधि लिखी है उसी २ योगमें पारा मिलाकर वैद्य दे ॥ ४ ॥

मात्राधिकं न सेवेत रसं वा विषमौषधम् ।
व्याधिवर्द्धं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

मात्रासे अधिक पारा वा और २ औषध वा अन्य विष जैसे संखिया कुचला, मीठातेलिया न खाय । वैद्यको उचित है कि रोगको जानकर या कोष्ठ अर्थात् उदरके बलाबलको देखकर अर्थात् रोगीकी अवस्थाके अनुसार मात्रा दे ॥ ५ ॥

मिरच और घीके साथ खानेसे आठ महारोगोंको और कास, ज्वर, श्वास और अतीसारको जीते, यह रत्नगर्भपोटलीरस योगवाही है ॥ ६-१२ ॥

इति रत्नगर्भपोटलीरसः।

अथ मृगांकरसः।

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत् ।
गंधकं च समं तेन रसपादस्तु टंकणम् ॥ १३ ॥
सर्वं तद्गोलकं कृत्वा कांजिकेनावशोषयेत् ।
भांडे लवणपूर्णे च पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ १४ ॥
मृगांकसंज्ञको ज्ञेयो राजरोगनिकृंतनः ।
गुंजाचतुष्टयं चास्य मरिचैर्भक्षयेद्भिषक् ॥ १५ ॥
पिप्पलीदशकैर्वापि मधुना लेहयेद्बुधः ।
पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायेणास्य प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥
दध्याज्यगव्यं तक्रं वा क्षीरं वाऽजं प्रयोजयेत् ।
व्यंजनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारैरहिंगुकैः ॥ १७ ॥
एलाजंबीरमरिचैः संस्कृतैररविदाहिभिः ।
वृंताकतैलबिल्वानि कारवेल्लं च वर्जयेत् ॥ १८ ॥
स्त्रियं परिहरेद्दूरात्कोपं चापि परित्यजेत् ।
वल्ली तुंबरिकानाम तन्मूलं क्वाथयेत्पलम् ॥ १९ ॥
कटुकत्रयसंयुक्तं पाययेत्कासशान्तये ।
त्रिशूली या समाख्याता तन्मूलं क्वाथयेद्बलम् ॥ २० ॥
ईषद्धिंगुसमायुक्तं काकिणी चित्रकं वचा ।
भक्षयेत्पथ्यभोज्यं च सर्वरोगप्रशान्तये ॥ २१ ॥

अथ रत्नगर्भपोटलीरसः ।

रसं वज्रं हेम तारं नागं लोहं च ताम्रकम् ।
तुल्यांशमारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥ ६ ॥
शंखं च तुल्यतुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः ।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेनापूर्य वराटिकाम् ॥ ७ ॥
टंकणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा मूषां च बंधयेत् ।
मृद्भांडे च निरुद्ध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ ८ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्ड्याः सप्तभावनाः ॥ ९ ॥
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ।
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुंजाचतुष्टयम् ॥ १० ॥
क्षयरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ।
योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचेन च ॥ ११ ॥
महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारके ।
पोटलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहेषु योजयेत् ॥ १२ ॥

शुद्ध पारा, हीरा, सुवर्ण, चांदी, सीसा, लोहा, तांबा और मरे हुए मोती सोनामक्खी और मूंगा शंख नीलाथोथा इन सबकी भस्म बराबर बराबर लेकर सात दिनतक चीतेके काढेमें खरल करे फिर इसको पीली कौडीमें भरकर आकके दूधसे घुटे हुए सुहागेसे कौडीका मुख बन्दकरदे फिर मूषामें रख मिट्टीके बर्तनमें रखकर गजपुटमें फूकदे ठंढा होनेपर उतारकर निर्गुंडीके रसकी सात भावना दे फिर अदरखके रसकी सात भावना दे और चीतेके रसकी इकीस भावना दे फिर सूखनेपर चार रत्तीकी रसकी मात्रा देवे तो साध्य और असाध्य क्षय रोगको दूर करे पीपल और शहदके साथ अथवा काली-

मर्कटीपत्रचूर्णस्य गुटिकां मधुना कृताम् ।
धारयेत्सततं वक्त्रे कासविष्टंभनाशिनीम् ॥ २२ ॥
छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम् ।
छागोपसेवाशयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ २३ ॥
मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं च जीवितम् ।
अतो विशेषतो रक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ २४ ॥

पारेके बराबर बराबर सोनेके वरक और दूने मोती और पारेके बराबर गंधक और चौथाई सुहागा सबको कांजीमें पीसकर गोला बनावे फिर नमकसे भरे हुए बर्तनके बीचमें इस गोलेको रखदे बासनका मुख बन्द कर चार पहरतक प्रचंड अग्निसे पचावे तो यह मृगांकसंज्ञक रस तैयार होजाय । यह राजयक्ष्माको दूर करता है इसकी मात्रा चार रत्तीकी है इसको कालीमिरच अथवा पीपल और शहदके साथ खाय प्रायः इसी पर हलके मांसका पथ्य देवे दही मक्खन गायकी छांछ अथवा दूध अथवा बकरीका दूध वा छांछका पथ्य देवे घीमें पकेहुए पदार्थ पुरी कचौरी इत्यादि खाय परन्तु इनमें बहुत नमक वा हींग न होवे इन पदार्थोंमें इलायची जंभीरी कालीमिरच हों पर तेज न हों बैंगन तेल बेल और करेले वर्जित हैं स्त्री और क्रोधको पास न आनेदे बेल और तूंबरीकी जडका काढा कर त्रिकुटा डालकर पीनेसे कास दूर होता है त्रिशूलीकी जडके काढेमें काकतुंडी, चीता और वच और थोडी फूलीहुई हींग डालकर इस रसको पीवे तो सब प्रकारके रोग दूर होवें । कौंछके पत्तोंके चूर्णमें शहद मिलाकर गोली बना मुहमें रखनेसे खांसी और मलका विकार दूर होता है बकरीका मांस बकरीका दूध बकरीका घी सोंठ मिलाकर खाय और बकरियोंको पाले और रातदिन बकरियोंमें रहे तो राजयक्ष्मा दूर हो मनुष्योंमें मलके अधीन बल है

और वीर्यके अधीन जीना है अतएव उचित है कि राजयक्ष्मामें मल और वीर्यकी अच्छे प्रकार रक्षा करे ॥ १३-२४ ॥

इति मृगांकरसः ।

अथ लोकनाथपोटलीरसः ।

पलं कपर्दचूर्णस्य पलं पारदगंधयोः ।
माषोऽपि टंकणस्यैको जंबीरेण विमर्दयेत् ॥ २५ ॥
पुटेल्लोकेश्वरो नामा लोकनाथोऽयमुत्तमः ।
जयेत्कुष्ठं रक्तपित्तमन्यरोगं क्षयं नयेत् ॥ २६ ॥
पुष्टवीर्यप्रदाता च कांतिलावण्यदः परः ।
कोऽस्ति लोकेश्वरादन्यो नृणां शंभुमुखोद्गतात् २७

कौडीकी भस्म चार तोले पारा और गंधक चार तोले और सुहागा एक मासा ये सब जंभीरीके रसमें मर्दन करे यह लोकेश्वरका कहा हुआ लोकनाथ रस रक्तपित्त कोढ और सब रोगोंका नाश करे पुष्टि और वीर्यका देनेवाला है कांति और सुन्दरताका देनेवाला है महादेवजीके कहेहुए इस लोकेश्वररससे और उत्तम रस मनुष्योंके लिये कोई नहीं है ॥ २५-२७ ॥

इति लोकनाथपोटलीरसः ।

अथ लोकेश्वरपोटलीरसः ।

रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् ।
द्विगुणं गंधकं दत्त्वा मर्दयेच्चित्रकांबुना ॥ २८ ॥
वराटकांश्च संपूर्य टंकणेन निरुद्ध्य च ।
भांडे चूर्णं प्रतिलिप्तेत्क्षिप्त्वा रुंधीत मृन्मये ॥२९॥
शोषयित्वा पुटेद्गर्भे वह्निं दत्त्वाऽपराह्णिके ।

स्वांगशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वाथ विन्यसेत् ॥ ३० ॥
एष लोकेश्वरो नाम वीर्यपुष्टिविवर्द्धनः ।

पारेकी भस्मसे चतुर्थांश सुवर्णकी भस्म ले और पारेसे दूनी गंधक लेकर चीतेके रसमें खरल करे फिर उसे पिट्ठीसे कौडियोंको भरकर सुहागेसे मुख बन्द कर दे कौडियोंको मिट्टीके बासनमें भरकर चूनेसे उसका मुख बन्द कर दे फिर सुखाकर गजपुटमें फूंकदे ठंढा होनेपर निकाल कर चूर्ण करके रखले यह लोकेश्वररस वीर्य और पुष्टिका बढानेवाला है इस रसका अनुमान नीचे लिखी हुई रीतिसे करे ॥ २८-३० ॥

तस्यैव सेवनप्रकारः ।

गुंजाचतुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ ३१ ॥
खादयेत्परया भक्त्या लोकेशः सर्वसिद्धिदः ।
अङ्गकार्श्येऽग्निमांद्ये च कासपित्ते रसस्त्वयम् ॥ ३२ ॥
मरिचैर्घृतसंयुक्तैः प्रदातव्यो दिनत्रयम् ।
लवणं वर्जयेत्तत्र शयीतोत्तानपादतः ॥ ३३ ॥
एकविंशद्दिनं यावन्मरिचं सघृतं पिबेत् ।
पथ्यं मृगांकवद्देयं शयीतोत्तानपादतः ॥ ३४ ॥

इस रसकी चार रत्तीकी मात्रा अंगकी कृशता और मंदाग्निमें देवे और खांसी और पित्तमें काली मिरच और घीके साथ तीन दिन देवे रोगी इकीस दिनतक लवण न खाय और जबतक मिरच घी खाय तबतक पैर सीधे पसारकर सोवे और इसपर पथ्य मृगांकके रसके समान देवे अर्थात् हलके मांसका पथ्य देवे घृतपाकपदार्थ जिनमें नोन मिरच खटाई अधिक न पडी होवे बैंगन बेल और तेल करेले न खाय स्त्रीसंसर्ग न करे ॥ ३१-३४ ॥

इति सेवनविधिः ।

ये शुष्का विषमानिलैः क्षयरुजा व्याप्ताश्च ये कुष्ठिनो
ये पांडुत्वहताः कुवैद्यविधिना ये शोषिणो दुर्भगाः ॥
ये तप्ता विविधैर्ज्वरैर्भ्रममदोन्मादैः प्रमादं गतास्ते सर्वे
विगतामया हतरुजः स्युः पोटलीसेवया ॥ ३५ ॥

वातादिक पवनके लगनेसे जो कृश होगये हैं और जो क्षयरोगसे व्याप्त हैं कोढी हैं पीलियाने ग्रस लिया है जिनको वैद्यने त्याग दिया हो शोष होगया हो विविधज्वरसे पीडित हों जिनको भ्रम मदोन्माद और प्रमाद होगया हो वे सब इस पोटलीके सेवनसे नीरोग (विगतामय) होजाते हैं ॥ ३५ ॥

इति लोकेश्वरपोटलीरस. ।

अथ राजमृगांकरसः ।

रसभस्मत्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिलागंधकतालकम् ॥ ३६ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
वराटीः पूरयेत्तेन ह्यजाक्षीरेण टंकणम् ॥ ३७ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भांडे च निरोधयेत् ।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥ ३८ ॥
रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुंजः कफापहः ।
दशभिः पिप्पलीक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ।
सघृतैर्दापयेत्कार्यं वातश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥ ३९ ॥

पारेकी भस्म तीन भाग सोनेकी भस्म १ भाग मरा हुआ तांबा एक भाग और मैनासिल गंधक हरितालके दो दो भाग ले सबको मिला पीली कौडीमें भरे बकरीके दूधमें सुहागेको रगड कौडीका

मुँह बन्द कर मिट्टीके बर्तनमें रख दे सूखनेपर गजपुटकी आग दे ठंढा होनेपर उतारले यह राजमृगांकरस है दश पीपल शहदके साथ चार रत्ती खानेसे कफको दूर करे कालीमिरच और घृतसे वात श्लेष्मासे उत्पन्न क्षयरोगमें देवे ॥ ३६-३९ ॥

इति राजमृगांकरसः ।

अथ रत्नगिरिरसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं मृतं स्वर्णाभ्रताम्रकम् ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात्सूतार्द्धं मृतलोहकम् ॥ ४० ॥
लोहार्द्धं मृतवैक्रान्तं मर्दयेद्भृंगजैर्द्रवैः ।
पर्पटीरसवत्पाच्यं चूर्णितं भावयेत्पृथक् ॥ ४१ ॥
शिग्रुवासकनिर्गुंडीवचासोमाग्निभृंगजैः ।
क्षुद्रा मुंडीजयंत्योश्च मुनिब्रह्मोत्यचित्रकैः ॥ ४२ ॥
कन्याद्रावैश्च संभाव्य प्रतिद्रावैस्त्रिधात्रिधा ।
रुध्वा लघुपुटे पाच्यं भूधरे तं समुद्धरेत् ॥ ४३ ॥

शुद्ध पारा इसीके समान गंधक, स्वर्ण, अभ्रक और तांबेकी भस्म ये सब पारेके समान ले पारेसे आधी लोहेकी भस्म और लोहेसे आधी वैक्रान्तकी भस्म इन सबोंको भांगरेके रसमें मर्दन कर पर्पटी रसकी तरह पचायकर नीचे लिखी हुई औषधियोंकी पृथक् पृथक् तीन २ भावना दे सहँजना, अडूसा, निर्गुंडी, वच, गिलोय, भांगरा, कटेरी, गोरखमुंडी, अरनी, अगस्तिया, ब्राह्मी, चीता, और ग्वारपाठाके रसमें फिर भूधरयंत्रसे लघुपुटकी आग दे उतारले ॥४०-४३॥

अस्य सेवनविधिः ।

इमं नवज्वरे दद्यान्माषमात्रं रसस्य तु ॥ ४४ ॥

कृष्णधान्यकसंमिश्रं मुहूर्ताद्विज्वरो भवेत् ।
अयं रत्नगिरिनामा रसो योगस्य वाहकः ॥ ४५ ॥

ठंढा होनेपर उतारकर एक मासा नवीनज्वरमें पीपल और धनियेके साथ दे तो दो घडीमें ज्वर दूर होजाय यह रत्नगिरि नाम रस योगवाही है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

इति रत्नगिरिरसः ।

अथ हिंगुलेश्वरो रसः ।

तुल्यांशं चूर्णयेत्खल्वे पिप्पलीं हिंगुलं विषम् ।
द्विगुंजं मधुना देयं वातज्वरनिवृत्तये ॥ ४६ ॥

पीपल, हिंगलू और विष बराबर बराबर लेकर खरल करे वातज्वरकी शान्तिके हेतु इसकी दो रत्ती मात्रा शहदके संग देवे ॥४६॥

इति हिंगुलेश्वरोरसः ।

अथ शीतभंजीरसः ।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टंकणगंधकम् ।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्ल्या द्रवैर्दिनम् ॥ ४७ ॥
मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् ।
अंगुल्यर्धप्रमाणेन पचेत्तत्सिकताह्वये ॥ ४८ ॥
यंत्रे यावत्स्फुटंत्येवं व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ।
ततः सुशीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ ४९ ॥
शीतभंजीरसो नाम चूर्णयेन्मरिचैः समम् ।
माषैकं पर्णखंडेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ।
त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकाद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ ५० ॥

पारा, खपरिया, हरिताल, नीलाथोथा सुहागा, गंधक ये सब सिद्ध किये हुए बराबर लेवे इन सबको करेलाके रसमें मर्दन करे फिर

इसको तांबेके बर्तनमें अंगुलके समान लेपदे फिर वालुकायंत्रमें चूल्हेपर रख आग देवे बालूके ऊपर धान रखदे जबतक धानकी खील न हो तबतक आगपर रहनेदे खिलजाय तब जाने कि, रस बनगया फिर ठंढा होनेपर तांबेके बर्तनसे निकाललै इस शीतभंजीरसमें कालीमिरच मिलाले इसमेंसे पांच रत्ती पानके साथ खानेसे तीन दिनमें विषमज्वर, ऐकाहिक, द्वयाहिक, त्र्याहिक और चातुर्थिक ज्वरका नाश होता है ॥ ४७–५० ॥

इति शीतभंजीरसः ।

अथ शीतारिरसः ।

सूतकं टंकणं गंधं शुल्बचूर्णं समं समम् ॥ ५१ ॥
सूताद्विगुणितं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ।
सैंधवं मरिचं चिंचात्वग्भस्मापि च शर्कराः ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जंबीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ ५२ ॥
द्विगुंजं तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहम् ।
रसः शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः ॥ ५३ ॥

पारा, गंधक, सुहागा और तांबेकी भस्म सब समान ले और पारेसे दूना विना छिलकेका जमालगोटा, सेंधानोन, कालीमिरच इमलीकी छालकी भस्म और मिश्री ये सब पारेकी बराबर ले जंभीरीके रसमें एक दिन खरल करे फिर दो दो रत्तीकी गोली बनावे गर्म पानीके साथ खानेसे वातज्वर और कफज्वरको दूर करे यह शितारिनाम रस शीतज्वरके लिये तो एकही औषधि है ॥ ५१–५३ ॥

इति शीतारिरसः ।

अथ ज्वरराजरसः ।

भागैकं रसराजस्य भागस्यार्द्धेन माक्षिका ॥ ५४ ॥

भागद्वयं शिलायाश्च गंधकस्य त्रयो मताः
तालकाष्टादश भागाः शुल्बस्य भागपंचकम् ॥ ५५ ॥
भल्लातकत्रयो भागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत्
वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढे मृन्मयभाजने ॥ ५६ ॥
विधाय सुदृढं मुद्रां पचेद्यामचतुष्टयम् ।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य मर्दयेत्सुदृढं पुनः ॥ ५७ ॥
गुंजाचतुष्टयं चास्य पर्णखंडेन दापयेत् ।
ज्वरराजः प्रसिद्धोऽयमष्टज्वरविनाशकः ॥ ५८ ॥
प्रातःकाले प्रभुज्यैनं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ।
भागेन तुत्थसंयुक्तं चातुर्थिकनिवारणम् ॥ ५९ ॥

पारा एक तोला सोनामक्खीका भस्म ६ मासे मैनशिल दो तोले गंधक तीन तोले हरताल १८ तोले और तांबेकी भस्म ५ तोले और शुद्ध कियेहुए भिलावे तीन तोले इन सबको थूहरके दूधमें खरल कर मिट्टीके पात्रमें रख इसका मुख मजबूत बन्द करे फिर चार पहरतक तीव्र आग्निसे पचावे स्वांगशीतल होनेपर उतारकर फिर खरल करे इसकी ४ रत्तीकी मात्रा पानके साथ देवे यह ज्वरराजरस आठ प्रकारके ज्वरोंको नाश करता है इसकी मात्रा प्रातःकाल ले छाछ और भात इसपर हित है इसमें नीलाथोथा मिलाकर देनेसे यह चौथिया ज्वरको खोता है ॥ ५४–५९ ॥

इति ज्वरराजरसः ।

अथापरः शीतभंजीरसः ।

रसहिंगुलगंधं च जैपालं च त्रिभिः समम् ॥
दंतीक्वाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः स्मृतः ॥ ६० ॥

आर्द्रकस्य रसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ।
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्याममात्रतः ॥ ६१ ॥
शर्करा दधिभक्तं च पथ्यं देयं प्रयत्नतः ।
शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुमुद्गरसो हितः ।
शीतभंजीरसो नाम्ना सर्वज्वरविनाशकः ॥ ६२ ॥

शुद्ध किया हुआ पारा, हिंगलु, गंधक और जमालगोटा तीनोंको बराबर लेकर दंतीके काढेमें खूब खरल कर अदरखके रसमें २ रत्ती देनेसे नवीन महाघोर ज्वरको पहरभरमें खोदता है इसपर दही भात और बूरेका पथ्य देवे इसके ऊपर ठंढा पानी पीवे ईख और मूंगका पानी भी हितकारक है यह शीतभंजीरस सब ज्वरोंका नाश करनेवाला है ॥ ६०–६२ ॥

इति अपरः शीतभंजीरसः ।

अथ महाज्वरांकुशः ।

सूतं गंधं विषं तुल्यं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ।
तच्चूर्णाद्द्विगुणं व्योषचूर्णं गुंजाद्वयं हितम् ॥ ६३ ॥
जंबीरकस्य मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतः ।
महाज्वरांकुशो नाम ज्वराष्टकनिकृंतनः ॥ ६४ ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ।
विषमं च त्रिदोषोत्थं हंति सर्वं न संशयः ॥ ६५ ॥
व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणं तथा ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान्भवेत् ॥ ६६ ॥

शुद्ध किया हुआ पारा, गंधक और विष ले तीनोंके बराबर धतूरेका बीज और सबसे दुगुनी त्रिकुटा अर्थात् (सोंठ मिरच पीपल) लेकर सबको खरल करे इसकी दो रत्तीकी मात्रा जंभीरी अथवा अदरखके रसमें देनेसे सब प्रकारके ज्वर एकांतरा, द्व्या-

हिक, तिजारी, चौथिया, त्रिदोषसे उत्पन्न विषमज्वरको नाश करता है, ज्वर हटनेपर जबतक देहमें बल न आवे तबतक कसरत, कुस्ती, स्नान, टहलना ये बातें न करे ॥ ६३–६६ ॥

इति महाज्वरांकुशो रसः ।

अथ प्राणेश्वरो रसः ।

शुद्धसूतं तथा गंधं मृताभ्रं विषसंयुतम् ॥ ६७ ॥
समं तन्मर्दयेत्तालमूलीनीरैस्त्र्यहं बुधः ।
पूरयेत्कूपिकां तेन मुद्रयित्वा विशोषयेत् ॥ ६८ ॥
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वाथ शोषयेत् ।
पुटेत्कुंभप्रमाणेन स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ ६९ ॥
गृहीत्वा कूपिकामध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः ।
अजाजी चित्रकं हिंगु स्वर्जिका टंकणं च यत् ॥ ७० ॥
गुग्गुलुः पंच लवणं यवक्षारो यवानिका ।
मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकं च समानतः ॥ ७१ ॥
एषां कषायेण पुनर्भावयेत्सप्तधाऽऽतपे ।
नागवल्लीदलयुतः पञ्चगुंजो रसेश्वरः ॥ ७२ ॥

शुद्ध कियाहुआ पारा और शुद्ध गंधक अभ्रककी भस्म और सिंगिया विष इन सबको बराबर लेकर तालमूलीके रसमें तीन दिनतक खरल करे फिर काचकी शीशीमें भरकर उसका मुँह बन्द करके सात कपडामिट्टी करे फिर सुखायकर कुंभपुटकी आग दे ठंढा होनेपर शीशीको निकालकर फोड लेवे फिर रस निकालकर एक दिन खरल करे जीरा, चीता, हींग, सज्जी, सुहागा, गूगल, पाचों नोन, जवाखार, अजवायन, मिरच और पीपल ये सब औषधी बराबर लेकर इनके काढेमें उस रसको सात भावना दें इसकी मात्रा

पांच रत्ती नागरपानके रसमें लेवे तो नीचे लिखेहुए गुण करे ॥ ६७-७२ ॥

अस्यैव सेवनविधिः ।

दद्यान्नवज्वरे तीव्रे सोष्णं वारि पिबेदनु ।
प्राणेश्वरो रसो नाम सन्निपातप्रकोपनुत् ॥ ७३ ॥
शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मे शूले त्रिदोषजे ।
वांछितं भोजनं दद्यात्कुर्याच्चन्दनलेपनम् ॥ ७४ ॥
तापोद्रेकस्य शमनं बालाभाषणगायनैः ।
प्रभवेन्नात्र संदेहः स्वास्थ्यं च लभते नरः ॥ ७५ ॥

नवीन ज्वरमें इस रसको पानके रसमें देवे ऊपरसे गर्म जल पीवे यह प्राणेश्वररस सब प्रकारके सन्निपातको दूर करनेवालाहै दाह-पूर्वक शीतज्वरमें गुल्ममें त्रिदोषसे उत्पन्न हुए शूलमें देवे । रोगीकी इच्छाके अनुसार भोजन देवे और शरीरमें चन्दन लगावे बालकोंकी मीठी बातें सुनना और गान ज्वरके वेगमें शांतिदायक हैं और शरी-रमें इस औषधिसे चैन होवे ॥ ७३-७५ ॥

इति प्राणेश्वरो रसः ।

अथ नवज्वरेभसिंहः ।

शुद्धं सूतं तथा गन्धं लोहं ताम्रं च सीसकम् ।
मरिचं पिप्पली विश्वं समभागानि चूर्णयेत् ॥७६॥
अर्द्धभागं विषं दत्त्वा मर्दयेद्वासरद्वयम् ।
शृंगवेरानुपानेन दद्याद्गुंजाद्वयं भिषक् ॥ ७७ ॥
नवज्वरे महाघोरे वाते संग्रहणीगदे ।
नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ७८ ॥

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक, मराहुआ लोह, तांबा और सीसा कालीमिरच, पीपल और सोंठ ये सब एक एक भाग और

आधा भाग विष लेकर दो दिनतक अदरखके रसमें खरल करे जब इस प्रकार बनजाय तब महाघोर नवीनज्वरमें इसको दो रत्तीकी गोली दे, यह बात और संग्रहणीको भी दूर करता है इस रसका नाम नव-ज्वरेभसिंह है सब रोगोंपर चलता है, वैद्यको उचित है बालक, वृद्ध, तरुण, बलवान्, कमजोर और स्त्रीके अनुसार मात्रा देवे ॥ ७६-७८ ॥

इति नवज्वरेभसिंहः ।

अथ पंचाननज्वरांकुशः ।

शंभोः कंठविभूषणं समरिचं मारारिरक्तं रविः
पक्षी सागरलोचनं शशियुतं भागोऽर्कसंख्यान्वितम् ।
खल्वे तं खलु मर्दितं रविजलैर्गुंजैकमात्रं ततः
सिंहोऽयं ज्वरदंतिदर्पदलनःपंचाननाख्योरसः ॥ ७९ ॥
पथ्यं च देयं दधितक्रभक्तं सिंधूत्थयुक्तं सितया समेतम्
गंधानुलेपो हिमतोयपानं दुग्धं च देयं शुभदाडिमं च८०

विष दो भाग, कालीमिरच चार भाग, गंधक दो भाग, सिंगरफ १ भाग, तांबेकी भस्म बारह भाग, इन सबको खरलमें डाल आकके दूधमें खरल करे फिर एक २ रत्तीकी गोली बनावे यह रस ज्वररूप हाथीके दाँतोंका दर्प तोडनेके लिये सिंहरूप है इसपर दूध दही भात सेंधानमक अथवा मिश्री मिलाकर पथ्य देना चाहिये चंद-नादि सुगंधित वस्तुओंका लेपन ठंढा पानी पीना हित है दूध और अनार भी हितकारक है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

इति पंचाननज्वरांकुशः ।

अथ पंचाननरसः ।

सूतं गन्धकचित्रकं त्रिकटुकं मुस्ता विषं त्रैफल-
मेतेभ्यो द्विगुणां गुडेन गुटिकां गुंजाप्रमाणां हरेत् ।

कुष्टाष्टादशवायुशूलमुदरं शोषप्रमेहादिकं
रोगानीककरीन्द्रदर्पदलने ख्यातो हि पंचाननः ८१ ॥

पारा, गंधक, चीतेकी छाल, त्रिकुटा, नागरमोथा और त्रिफला, ये सब समान ले इनसे दूना गुड लेकर मर्दन करे एक एक रत्तीकी गोलियाँ बनावे यह अठारह प्रकारके कोढ वायुशूल उदरशोष और प्रमेहको दूर करता है यह पंचानन नाम रस हाथीके समूहरूपी रोगोंके समूहका दर्प दूर करनेवाला है ॥ ८१ ॥

इति पंचाननरसः ।

अथ मृतसंजीवनीरसः ।

म्लेच्छस्य भागाश्चत्वारो जैपालस्य त्रयो मताः ।
द्वौ भागौ टंकणस्यैव भागैकममृतस्य च ॥ ८२ ॥
तत्सर्वं मर्दयेत्सूक्ष्मं शुष्कं यामं भिषग्वरः ।
शृंगवेरांबुना देयो व्योषचित्रकसैंधवैः ।
गुंजाद्वयमितस्तापं हरत्येष विनिश्चयः ॥ ८३ ॥

हिंगलू चार भाग, जमालगोटा शुद्ध तीन भाग, सुहागा दो भाग, गिलोय एक भाग, इन सबको पहरभर खूब खरल करे फिर अदरखके रसमें मर्दन करके त्रिकुटा, चीता और सेंधानमक इसमें डाल दे इसकी दो रत्तीकी मात्रा निश्चय तापको दूर करती है॥८२॥८३॥

अस्यैव सेवनप्रकारः ।

घनसारेण युक्तेन चंदनेन विलेपयेत् ॥ ८४ ॥
विदध्यात्कांस्यपात्रेण जीवयेद्रोगिणं भिषक् ।
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्बिल्वसंयुतम् ॥ ८५ ॥

सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे
आमवाते वातशूले गुल्मे प्लीह्नि जलोदरे ॥ ८६ ॥
शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सततज्वरे ।
अग्निमांद्ये च वाते च प्रयोज्योऽयं रसेश्वरः ॥ ८७ ॥
मृतसंजीवनी नाम ख्यातोऽयं रससागरे ॥ ८८ ॥

कपूर मिलेहुए चन्दनका लेपन करे पथ्य इसपर बिल्वप्रमाण भात और छांछ देवे. यह रससागरमें लिखा हुआ मृतसंजीवन नाम रसेश्वर महाघोर सान्निपात, त्रिदोष, विषमज्वर, आमवात, वायु, शूल, गुल्म, तापतिल्ली, जलोदर, शीतपूर्वक और दाहपूर्वक विषमज्वर और निरन्तरज्वर इन रोगोंका नाश करता है ॥ ८४-८८ ॥

इति मृतसंजीवनीरसः ।

अथ रविसुंदरो रसः ।

द्विभागतालेन हतं च ताम्रं रसं च गंधं च समानमाहुः । विषं समं तद्द्विगुणं च ताम्रं त्रिसप्तवारेण दिवाकरांशौ ॥ ८९ ॥ विमर्द्य रिष्टस्वरसेन चूर्णं गुंजैकमानं सितया समेतम् । ज्वरांकुशोऽयं रविसुन्दराख्यो ज्वरान्निहन्त्यष्टविधान्समग्रान् ॥ ९० ॥

दो भाग हरताल, मरा हुआ तांबा, शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक समान ले और समान ही विष ले विषसे दूनी तांबेकी भस्म ले आकके रसमें इकीस बार घोटे और फिर नींबूके रसमें घोटकर एक एक रत्तीकी गोली बनावे और मिश्रीके साथ दे तो यह रविसुन्दर नाम रस आठ प्रकारके ज्वरोंको नाश करता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

इति रविसुन्दरो रसः ।

अथ सन्निपातभैरवो रसः ।

ताम्रगंधरसश्वेतस्पंदामरिचपूतनाः ।
समीनपित्तजैपालास्तुल्या एकत्र मर्दिताः ॥ ९१ ॥

गुंजाचतुष्टयं चास्या नवज्वरहरः परः ।
ज्वरांकुशः सन्निपातभैरवोऽयं प्रकाशितः ॥ ९२ ॥

तांबेकी भस्म, गंधक, पारा और श्वेतसपन्द, काली मिरच, हरड, मछलीका पित्त और शुद्ध किया हुआ जमालगोटा इन सबको खरल करे इसकी चार रत्तीकी मात्रा नवीनज्वरको दूर करती है यह ज्वरांकुश सन्निपातभैरवरस नामसे प्रसिद्ध है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

इति सन्निपातभैरवो रसः ।

अथ भस्मेश्वरो रसः ।

भस्मषोडशनिष्कं स्यादारण्योपलकोद्भवम् ।
निष्कत्रयं च मरिचं विषं निष्कं च चूर्णयेत् ॥९३॥
अयं भस्मेश्वरो नाम्ना सन्निपातनिकृन्तनः ।
पंचगुंजामितो भक्षेदार्द्रकस्य रसेन च ॥ ९४ ॥

सोलह निष्क आरने उपलोंकी भस्म और तीन निष्क काली मिरच और एक निष्क सींगिया विष इन सबको खरल करे पांच रत्ती मात्रा अदरखके रसके साथ खाय तो यह भस्मेश्वर नाम रस सन्निपातको दूर करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

इति भस्मेश्वरो रसः ।

अथ प्रतापलंकेश्वरो रसः ।

अपामार्गस्य मूलस्य चूर्णं चित्रकमूलजैः ।
वल्कलैर्मर्दयित्वा च रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ९५ ॥
तेन सूतसमं गंधमभ्रकं दारदं विषम् ।
टंकणं तालकं चैव मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ ९६ ॥
त्रिदिनं मुशलीकंदैर्भावयेद्धर्मरक्षितम् ।
मूषां च गोस्तनाकारामापूर्य परिढक्रयेत् ॥ ९७ ॥

सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा पुटेल्लघु ।
रसतुल्यं लोहभस्म मृतं वंगरजस्तथा ॥ ९८ ॥
मधूकसारजलदो रेणुका गुग्गुलुः शिला ।
चव्यकं च समांशं स्याद्भागार्द्धं शोधितं विषम्॥९९॥
तत्सर्वं मर्दयेत्खल्वे भावयेद्विषनीरतः ।
आतपे सप्तधा तीव्रे मर्दयेद्वटिकाद्वयम् ॥ १०० ॥
कटुत्रयकषायेण कनकस्य रसेन च ।
फलत्रयकषायेण मुनिपुष्परसेन च ॥ १०१ ॥
समुद्रफलनीरेण विजयावारिणा तथा ।
चित्रकस्य कषायेण ज्वालामुख्या रसेन च ॥१०२॥
प्रत्येकं सप्तधा भाव्यं तद्वात्पिष्टं च भावयेत् ।
सर्वस्य समभागेन विषेण परिधूपयेत् ॥ १०३ ॥
दिनं विमर्दयित्वाऽथ रक्षयेत्कूपिकांतरे ।
गुंजैकं वह्निनीरेण शृंगवेररसेन वा ॥ १०४ ॥
प्रदद्याद्रोगिणे तीव्रमोहविस्मृतिशांतये ।
शस्त्रेण तालुमाहत्य मर्दयेदार्द्रनीरतः ॥ १०५ ॥
नोद्घटंते यदा दन्तास्तदा कुर्यादमुं विधिम् ।
सेचयेन्मंत्रयित्वाऽथ वारां कुंभशतैर्मुहुः ॥ १०६ ॥
भोजनेच्छा यदा तस्य जायते रोगिणस्तदा ।
दध्योदनं सितायुक्तं दद्यात्तक्रं सजीरकम् ॥ १०७॥
पाने पानं सितायुक्तं यदीच्छति तदा ददेत् ।
एवं कृते च शांतिः स्यात्तापस्य रसजस्य च॥१०८॥

आंगाकी जड और चीतेकी जडकी छाल दोनोंको पानीमें घोटकर वस्त्रमें छान ले फिर इस रसके समान पारा, गंधक, अभ्रक, हिंगलू, विष, सुहागा, हरिताल, सबको मिलाकर सात दिनतक खरल करे फिर तीन दिन मूसलीके रसमें खरल करके धूपमें सुखा ले फिर मौके यनकीसी मूषामें इसको भर ऊपरसे ढकदेवे पीछे सात कपडमिट्टी कर लघुपुटमें फूंक दे पीछे इसमें पारेके समान लोहभस्म बंगभस्म सीसाभस्म मुलहठी नागरमोथा रेणुका गुग्गुल मैनसिल और नागकेशर और आधा भाग शोधा हुआ विष इन सबका खरल करे फिर सींगिया विषके पानीमें देकर घोट घोटकर दो घडी धूपमें रखदे फिर त्रिकुटाके काढेसे, धतूरेके रससे, त्रिफलाके काढेसे, अगस्तियाके फूलके रससे समुद्रफेनके रससे, भांगके रससे, चीतेके काढेसे और ज्वालामुखीके रससे सात सात भावना जुदी जुदी देवे, फिर इनको घोट पीस सबके समान विष डालदे फिर इसको काचकी शीशीमें भरदे और होशयारीसे रक्खे यह रस एक रत्ती चीते अथवा अदरखके रसमें रोगीको मूर्च्छा अथवा विस्मृतिके लिये देवे अथवा रोगीके तालुको छुरीसे चीरकर अदरखके रससे इसको भरदे यदि इस परभी दांत न खुलें तो उसके शिरपर सौ घडे पानीके डाले यदि रोगीको भोजनकी इच्छा होवे तो मिश्री मिला दहीभात अथवा जीरा मिली हुई छाछ देवे पीनेके लिये शरबत जो इच्छा करे तो ऐसे करनेसे ताप और रसकी गर्मी शान्त होती है ॥ ९५–१०८ ॥

अस्यैव सेवनप्रकारः ।

सचन्द्रचन्दनरसोल्लेपनं कुरु शीतलम् ।
तूलिकामल्लिकाजातीपुन्नागबकुलावृताम् ॥ १०९ ॥
विधाय शय्यां तत्रस्थं लेपयेच्चन्दनैर्मुहुः ।
हावभावविलासोक्तिकटाक्षचंचलेक्षणैः ॥ ११० ॥

पीनोत्तुंगकुचोत्पीडैः कामिनीपरिरंभणैः ।
रम्यवीणानिनादाद्यैर्गायनैः श्रवणामृतैः ॥ १११ ॥
पुण्यश्लोकपुराणानां कथासंभाषणैः शुभैः ।
एभिः प्रकारैस्तापस्य जायते शमनं परम् ॥११२॥
वर्जयेन्मैथुनं तावद्यावन्नो बलवान् भवेत् ।
दद्याद्वातादिरोगेषु सिंधुगुग्गुलवह्निभिः ॥ ११३ ॥
दद्यात्कृष्णामाक्षिकाभ्यां कामलाक्षयपांडुषु ।
तत्तद्रोगानुपानेन सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ११४ ॥
अयं प्रतापलंकेशः सन्निपातनिकृन्तनः ॥ ११५ ॥

और भी यह काम करे कपूरसहित चन्दन लेपन, मौलसरी, चमेली और पुन्नागके फूलोंकी सेज कर रोगीको सुवावे और बराबर चन्दन लगाता रहे नवीन हाव, भाव, कटाक्ष, पीनोत्तुंग कुचवाली युवतियोंसे आलिंगन, मधुर वीणा आदि बाजोंकी ध्वनि, दिल बहलावके लिये कथा, पुराण, कहानीका सुनना इन बातोंसे तापका नाश होता है, जबतक बल न आवे तबतक मैथुन न करे, वातादिरोगमें सेंधानोन, गुगुल और चीतेके काढेके साथ दे. कामला, क्षय और पीलियामें पीपल और शहदके साथ चटावे जैसा रोग हो उसमें उसी अनुपानके साथ देवे. यह प्रतापलंकेश्वर नाम रस सन्निपातका जीतनेवाला है ॥ १०९–११५ ॥

इति प्रतापलंकेश्वररसः ।

अथ महोदधिरसः ।

सूतकं गंधकं लोहं विषं चापि वराटकम् ।
ताम्रकं वंगभस्माथ अभ्रकं च समांशकम् ॥११६॥
त्रिकुटं पत्रमुस्तं च विडंगं नागकेशरम् ।

रेणुकामलकं चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ ११७ ॥
एषां च द्विगुणं भागं मर्दयित्वा प्रयत्नतः ।
भावना तत्र दातव्या गजपिप्पलिकाम्बुना ॥ ११८ ॥
मात्रा चणकमाना तु वटिकेयं प्रकीर्तिता ।
श्वासं हन्ति तथा कासमर्शांसि च भगन्दरम् ॥ ११९ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कर्णरोगं कपालिकम् ।
हरेत्संग्रहणीरोगमष्टौ च जाठराणि च ।
प्रमेहविंशतिं चैव अश्मरीं च चतुर्विधाम् ॥ १२० ॥
न चान्नपाने परिहारमस्ति न शीतवाताध्वनि मैथुने च ।
यथेष्टचेष्टाभिरतःप्रयोगे नरो भवेत्कांचनराशिगौरः १२१

शुद्ध पारा, गंधक, लोहा, विष, कौडि ताम्रभस्म, वंगभस्म और अभ्रक ये सब बराबर लेवे. त्रिकुटा, नागरमोथा, बायविडंग, नागकेशर, रेणुका, आमला, पीपलामूल ये सब दो दो भाग ले इन सबको खरल कर गजपीपलके रसकी तीन भावना देवे चनेकी बराबर गोली बनावे. यह महोदधिरस श्वास, खांसी, बवासीर, भगन्दर, हृदयशूल, पसलीका शूल, कानका दर्द व कपालके रोगको दूर करता है. संग्रहणी और आठ प्रकारके उदररोगोंको, बीस प्रकारके प्रमेहोंको और चार प्रकारकी पथरीको दूर करता है. इसमें किसी प्रकारके अन्न पानीका परित्याग, मार्गमें शरदी हवा मैथुनकी रोक नहीं है. इच्छाके अनुसार काम करनेपरभी मनुष्यका शरीर सुवर्णसा होजाता है ॥ ११६-१२१ ॥

इति महोदधिरसः ।

अथोन्मत्ताख्यो रसः ।

रसं च गंधकं चैव धत्तूरफलजैर्द्रवैः ।
मर्दयेद्दिनमेकं च तुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत् ॥ १२२ ॥

उन्मत्ताख्यरसो नाम सन्निपातनिकृन्तनः ।
कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥
सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति देहिनम् ॥ १२३ ॥

पारा और गंधक समान लेकर धतूरेके फलके रससे एक दिन खरल करे फिर समान सोंठ, मिरच, पीपल डालदे, यह उन्मत्ताख्य नाम रस सन्निपातको नाशक है. जो मनुष्य सन्निपात रोगसमुद्रमें डूबे हुए मनुष्यको निकालता है उसने सब धर्म करलिये और वही सब प्रकार पूजाके योग्य है ॥ १२२-१२३ ॥

इति उन्मत्ताख्यो रसः ।

अथ संज्ञाकरणो रसः ।

वचा रसोनकटुकं सैंधवं बृहतीफलम् ।
रुद्राक्षं मधुसारं च फलं सामुद्रिका मृतम् ॥ १२४ ॥
समभागानि चैतानि ह्यर्कक्षीरेण भावयेत् ।
भावयेन्मत्स्यपित्तेन त्रिवारं चूर्णयेत्ततः ॥ १२५ ॥
धमनं कथितं श्रेष्ठं सान्निपाते सुदारुणे ।
कफोल्बणेऽतिवाते च अपस्मारे हलीमके ॥ १२६ ॥
शिरोरोगे कर्णरोगे नेत्ररोगे विधानतः ।
दापयेद्घ्राणछिद्राभ्यां संज्ञाकरणमुत्तमम् ॥ १२७ ॥

वच, लहसन, कुटकी, सेंधानमक, बडी कटेरी, रुद्राक्ष, मुलहठी, समुन्दरफल और विष ये सब समान भाग ले और आकके दूधकी भावना दे फिर मछलीके पित्तेकी तीन भावना देकर पीसले सान्निपातमें इसका धमन उत्तम है कफकी अधिकतामें, वातमें,

मृगीमें, पीनसमें, शिरके रोगोंमें, कर्णरोगमें नेत्र रोगमें इस उत्तम संज्ञाकरण रसको नासिकाके छिद्रद्वारा विधिपूर्वक ऊपरको चढावे ॥ १२४-१२७ ॥

इति संज्ञाकरणो रसः ।

अथ चन्द्रशेखरो रसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं मरिचं टंकणं तथा ॥ १२८ ॥
चतुस्तुल्या सिता योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥
त्रिदिनं मर्दयेत्तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः ॥ १२९ ॥
द्विगुंजमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं पुनः ।
तक्रभक्तं च वृंताकं पथ्यं तत्र निधापयेत् ॥ १३० ॥

शुद्ध किया हुआ पारा और इसके समानही शुद्ध की हुई गंधक और कालीमिरच और सुहागा ले और इन चारोंके बराबर मिश्री मिलाकर मछलीके पित्तेमें घोटे, तीन दिन घोटनेसे यह चन्द्रशेखररस होता है इसकी दो रत्ती अदरखके रसमें दे ऊपरसे ठंढा पानी पिलावे पथ्य छांछ और भात बैंगनका साग देवे तो तीन दिनमें पित्त और कफज्वरको दूर करे ॥ १२८-१३० ॥

इति चन्द्रशेखरो रसः ।

अथ कनकसुन्दरो रसः ।

हिंगुलं मरिचं गंधं पिप्पलीं टंकणं विषम् ॥ १३१ ॥
कनकस्य च बीजानि समांशं विजयारसैः ।
मर्दयेद्याममात्रं तु चणमात्रा वटी कृता ॥ १३२ ॥
भक्षणाद्ग्रहणीं हन्याद्रसः कनकसुंदरः ।
अग्निमांद्यं ज्वरं तीव्रमतिसारं च नाशयेत् ॥१३३॥

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहिलाघवम् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम् ॥ १३४ ॥

हिंगलू, कालीमिरच, गंधक, पीपल, सुहागा, विष और धतूरेके बीज ये सब बराबर लेकर भांगके रसमें पहरभर खरल करे फिर चनेकी बराबर गोलियां बनावे तो यह कनकसुन्दररस संग्रहणी मंदाग्नि, ज्वर, अतीसारका नाश करे पथ्य इसपर दही भात और गौ अथवा बकरीका मट्ठा देवे क्योंकि संग्रहणीरोगवालोंको मट्ठा दीपन है और लघु है और पथ्य मधुर पाकित्व होनेसे पित्तको नहीं बढाता है ॥ १३१-१३४ ॥

इति कनकसुन्दररसः ।

अथ रामबाणरसः ।

सूतकं गंधकं चैव शाणं पाणं च गृह्यते ॥ १३५ ॥
दरदं टंकणं चैव मरिचं च विषं तथा ।
चत्वारौषधयः सर्वे द्विद्विटंकं च कथ्यते ॥ १३६ ॥
जैपालबीजं संयोज्यं टंकं च दिक्प्रमाणतः ।
तिंतिडीरससंमर्द्य गुंजामात्रवटी कृता ॥ १३७ ॥
तुलसीपत्रसंयुक्ता सर्वे च विषमज्वराः ।
एकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् १३८॥
शीतदाह्यादिकं सर्वं नाशयति च वेगतः ।
पथ्यं दुग्धौदनं देयं दधिभक्तं च भोजनम् ॥ १३९॥
रामबाणरसो नाम सर्वरोगप्रणाशकः ॥ १४० ॥

पारा शाणभर, गंधक तोलेभर, सिंगरफ, सुहागा, मिरच व मीठा तेलिया ये चारों दो दो टंक और दशटंक जमालगोटेके बीज ये सब इमलीके रसमें खरल करके रत्तीभरकी गोली बनावे और

तुलसीके पत्तोंके संग खानेसे सब प्रकारके विषमज्वर, ऐकाहिक द्व्याहिक, त्र्याहिक, चौथिया, शीतज्वर, दाहज्वरको तत्काल नाश करदेता है दूध चावल अथवा दही भात पथ्य देवे इस रामबाणका याग धन्वन्तरिने अपने पुत्रके हेतु किया था यह सब रोगोंको नाश करता है ॥ १३५-१४० ॥

इति रामबाणरसः ।

अथ चन्द्रप्रभावटी ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं मृतं स्वर्णं समं समम् ।
तुल्यं च खादिरं सारं तथा मोचरसं क्षिपेत् ॥१४१॥
द्रवैः शाल्मलिमूलोत्थैर्मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ।
चणमात्रां वटीं भक्षेत्रिष्कैकं जीरकैः सह ।
त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ १४२ ॥

पारा, तांबा और सुवर्ण इन तीनोंका भस्म लेकर इनके समान ही खैरसार और मोचरस लेवे इन सबको सेमरकी जडके रसमें दो पहर खरल करे फिर चनेकी बराबर गोली बनावे एक गोली तीन मासे जीरेके संग खाय तो ज्वरसहित त्रिदोषका अतीसार दूर होवे ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

इति चन्द्रप्रभावटी ।

अथ चित्राम्बररसः ।

शुद्धसूतं मृतं चाभ्रं गन्धकं मर्दयेत्समम् ।
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते यामं मृद्वग्निना पचेत् ॥१४३॥
चालयेल्लोहदंडेन ह्यवतार्य विभावयेत् ।
त्रिदिनं जीरकैः क्वाथैर्मासैकं भक्षयेन्नरः ॥ १४४ ॥
रसश्चित्रांवरोनाम ग्रहणीं रक्तसंयुताम् ।
शमयेदनुपानेन आमशूलं प्रवाहिकाम् ॥ १४५ ॥

शुद्ध पारा, अभ्रकका भस्म और गंधक इन तीनोंको समान लेकर खरल करे फिर घृतसे चुपडे हुए लोहेके पात्रमें मंदी मंदी आगसे सेंके और लोहेकी कलछीसे चलाता रहे फिर उतारकर तीन दिन जीरेके काढेसे खरल करे और एक २ मासेकी गोलियां बनावे यह चित्रांबर नाम रस दस्तके साथ रुधिर आवे ऐसी संग्रहणीको, अनुपानके साथ खानेसे आमशूल और प्रवाहिकाको दूर करे ॥ १४३-१४५ ॥

इति चित्रांबररसः ।

अथ ग्रहणीकपाटरसः ।

तारमौक्तिकहेमायःसारश्चैकैकभागिकाः ।
द्विभागो गंधकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेद्दिनम् ॥१४६॥
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृंगे ततः क्षिपेत् ।
पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥ १४७ ॥
बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा ।
लोध्रप्रतिविषामुस्ताधातकीन्द्रयवामृताः ॥ १४८ ॥
प्रत्येकमेषां स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधात्रिधा ।
माषमात्ररसो देयो मधुना मरिचैः सह ॥ १४९ ॥
हन्यात्सर्वानतीसारान्ग्रहणीं पंचधापि च ।
कपाटो ग्रहणीनाम रसोऽयं चाग्निदीपनः ॥ १५० ॥

रूपा, मोती, सुवर्ण, व लोहा इन सबकी भस्म एक एक भाग और गंधक शुद्ध दो भाग और पारा तीन भाग दिनभर कैथके रससे मर्दन करे फिर हिरणके सींगमें भरदे ऊपरसे कपडमिट्टी करके मध्यपुटकी आगमें फूंकदे फिर निकालकर बला अर्थात् खरेटीके रसमें सात बार घोटे और ओंगाके रसमें तीन बार घोटे लोध, अतीस,

नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ और गिलोय इन सबमेंसे प्रत्येककी तीन ३ भावना देवे. इसकी एक मासेकी मात्रा शहद और मिरचके संग देनेसे सब प्रकारके अतीसार और पांच प्रकारकी संग्रहणीको दूर करता है यह रस ग्रहणीकपाट नाम जठराग्निको प्रज्वलित करनेवाला है ॥ १४६-१५० ॥

इति ग्रहणीकपाटरसः ।

अथ वज्रकपाटरसः ।

मृतसूताभ्रकं गंधं यवक्षारं सटंकणम् ॥ १५१ ॥
अग्निमंथं वचां कुर्यात्सूततुल्यामिमां सुधीः ।
ततो जयंतीजंबीरभृंगद्रावैर्विमर्दयेत् ॥ १५२ ॥
त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत् ।
लोहपात्रे च लवणं अधोपरि निधापयेत् ॥ १५३ ॥
अधोवह्निं शनैः कुर्याद्यामार्धं च तदुद्धरेत् ।
रसतुल्यामतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा ॥ १५४ ॥
कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् ।
धातकीद्रयवमुस्तालोध्रबिल्वगुडूचिकाः ॥ १५५॥
एतद्रसैर्भावयित्वा वारैकं च विशोषयेत् ।
रसवज्रं कपाटाख्यं माषैकं मधुना लिहेत् ॥ १५६॥
वह्निः शुंठी विडंगापि बिल्वं च लवणं समम् ।
पिबेदुष्णाम्बुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ॥१५७॥

पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, गंधक, जवाखार, सुहागा, अरनी और वच ये सब पारेके समान लेवे इन सबको जयंती, जंभीरी, और भांगरेके रसमें तीन दिन खरल करे फिर गोला बनाकर सुखा-लेवे फिर लोहेके पात्रमें उसको रख ऊपरसे नमक भरदे फिर आधे पहर-

तक नीचे मंदी आगसे सेंककर उतार ले पीछे पारेके समान अतीस डालकर कैथ और भांगके रसकी सात सात भावना देवे फिर धायके फूल, इन्द्रजौ, मोथा, लोध, बेल और गिलोयके रसकी एक एक भावना देकर सुखाले एक एक मासेकी गोलियां बनाकर शहदके संग खाय ऊपरसे चीता, सोंठ, वायविडंग, बेल, लवण ये समान लेकर चूर्ण कर गर्मजलके साथ लेवे तो यह वज्रकपाटरस सब प्रकारकी ग्रहणीको शान्त करता है ॥ १५१ ॥ १५७ ॥

इति वज्रग्रहणीकपाटरसः ।

अथ ग्रहणीकपाटरसः ।

मुक्तासुवर्णं रसगंधटंकणं घनं कपर्दोऽमृततुल्यभागम् ।
सर्वैः समं शंखकचूर्णयुक्तं खल्वे च भाव्योऽतिविषाद्रवेण
॥१५८॥गोलं च कृत्वा मृतकर्करस्थं संरुध्य चाग्नौ हि
पचेद्दिनार्धम् । सुस्वांगशीतो रस एष भाव्यो धत्तूरवह्नि-
मुशलीद्रवैश्च॥१५९॥लोहस्य पात्रे परिपाचितश्च सिद्धो
भवेत्संग्रहणीकपाटः । वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तःपित्तो-
त्तरायां मधुपिप्पलीभिः ॥१६०॥ श्लेष्मोत्तरायां विजया-
रसेन कटुत्रयेणापि युतो ग्रहण्याम् ॥ १६१॥क्षये ज्वरेऽ-
प्यर्शासि विड्विकारेसामातिसारेऽरुचिपीनसे च । मोहे च
कृच्छ्रे गतधातुवृद्धौ गुंजाद्वयं चापि महामयघ्नम्॥१६२॥

मोती, सुवर्णभस्म, पारा, गंधक, सुहागा, नागरमोथा विष ये समान ले इन सबके बराबर शंखकी भस्म मिलाकर अतीसके रसकी भावना दे फिर गोला बनाकर मिट्टीके बासनमें रख संपुट कर आधे दिनतक अग्निपर रक्खे ठंढा होनेपर उतारकर धतूरा, चीता और मूसलीके रसकी एक एक भावना देवे फिर लोहेके पात्रमें पचानेसे यह ग्रहणीकपाट सिद्ध होता है वातजन्य ग्रहणीमें कालीमिरच और

घीके साथ देवे पित्तज ग्रहणीमें शहद और पीपलके साथ और कफ, जन्य ग्रहणीमें भांगके रस अथवा त्रिकुटाके साथ देवे । क्षयी,ज्वर, बवासीर, मलके विकार, आमातिसार, अरुचि, पीनस, मोह, कृच्छ्र धातुक्षीण इन रोगोंमें दो रत्तीकी मात्रा देवे यह रस ऐसे बडे बडे रोगोंको दूर करता है ॥ १५८ ॥ १६२ ॥

इति ग्रहणीकपाटरसः ।

अथ विजयभैरवरसः ।

सूतकं गंधकं लोहं विषं चित्रकमभ्रकम् ।
विडंगं रेणुका मुस्ता एला केशरपत्रकम् ॥
फलत्रयं त्रिकटुकं शुल्वभस्म तथैव च ॥ १६३ ॥
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ।
कासे श्वासे क्षय गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ॥ १६४ ॥
सूतायां ग्रहणीमांद्ये शूले पांडामये तथा ।
हस्तपादादिरोगेषु गुटिकेयं प्रशस्यते ॥ १६५ ॥

पारा, गंधक, लोहेका भस्म, विष, चीता, अभ्रकका भस्म, वायविडंग, रेणुका, मोथा, इलायची, केशर, तेजपात, त्रिफला, त्रिकुटा और तांबेकी भस्म ये सब समान ले और इन सबसे दूना गुड ले खरल करे और दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे. ये वटिका खांसी, श्वास, क्षयी, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, प्रसूता स्त्रीकी संग्रहणी, अग्निमांद्य, शूल, पीलिया और हाथपांवकी पीडामें उत्तम कही गई हैं ॥ १६३-१६५ ॥

इति विजयभैरवरसः ।

अथ आनन्दभैरवो रसः ।

दरदं वत्सनाभं च मरिचं टंकणं कणा ॥ १६६ ॥

चूर्णयेत्समभागेन रसो ह्यानन्दभैरवः ।
गुंजैकं तु द्विगुंजं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत् ॥ १६७ ॥
मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलत्वचम् ।
चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषस्यातिसारजित् ॥ १६८ ॥
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गव्याजं तक्रमेव च ।
पिपासायां जलं शीतं हिता च विजया निशि ॥ १६९ ॥

हिंगलू, वत्सनाभ विष, कालीमिरच, सुहागा और पीपल सबको बराबर लेकर चूर्ण करे यह आनन्दभैरव रस है. बलाबल देखकर एक रत्ती अथवा दो रत्तीकी मात्रा दे ऊपरसे कूडेकी छाल एक कर्ष शहदके संग चाटे तो त्रिदोषसे उत्पन्न अतिसार नाश होता है. पथ्य दही भात और गौका बकरीका मट्ठा देवे,प्यास लगनेपर शीतल जल और रातमें भांग हित है ॥ १६६ ॥ १६९ ॥

इति आनन्दभैरवो रसः ।

अथ मेघडंबरो रसः ।

तंदुलीयजलैः पिष्टं सूततुल्यं च गन्धकम् ।
अंधमूषागतं पक्त्वा भूधरे भस्मतां नयेत् ॥ १७० ॥
दशमूलकषायेण भावयेत्प्रहरद्वयम् ।
गुंजाद्वयं हरत्याशु हिक्कां कासं ज्वरं तथा ।
अनुपानेन दातव्यो रसोऽयं मेघडंबरः ॥ १७१ ॥

चौलाईके रसमें पारे और गंधकको समान लेकर खरल कर फिर अंधमूषामें रख भूधरयंत्रद्वारा पचावे फिर दशमूलके काढेमें इसको दो पहरतक खरल करे इस मेघडंबर नाम रसकी दो दो रत्तीकी गोली बनावे यह हिचकी खांसी और ज्वरको अनुपानके साथ देनेसे बहुत शीघ्र दूर करता है ॥ १७० ॥ १७१ ॥

इति मेघडंबरो रसः ।

अथ त्रिगुणाख्यो रसः।

गंधकाद्विगुणं सूतं शुद्धं मृद्वग्निना क्षणम् ॥ १७२ ॥
पक्त्वाऽवतार्य संचूर्ण्य चूर्णतुल्याभयायुतम्।
सप्तगुंजामितं खादेद्वर्द्धयेच्च दिने दिने ॥ १७३ ॥
गुंजैकं च क्रमेणैव यावत्स्यादेकविंशतिः।
क्षीराज्यशर्करामिश्रं शाल्यन्नं पथ्यमाचरेत् ॥१७४॥
कंपवातप्रशान्त्यर्थं निर्वाते निवसेत्सदा।
त्रिगुणाख्यो रसो नाम्ना त्रिपक्षात्कंपवातनुत् १७५॥

गंधकसे दूना शुद्ध किया हुआ पारा लेकर थोडी देर अग्निपर धीरे धीरे पचावे फिर उतारकर इसके बराबर हरडका चूर्ण मिलावे पहिले दिन सात रत्ती खाय फिर एक एक रत्ती प्रतिदिन बढता रहे (दूसरे दिन ८ तीसरे ९.) इसी प्रकार इक्कीस रत्ती तक बढावे. इसपर पथ्य दूध मक्खन मिश्री और चावलका लेवे और ऐसे मकानमें रहे जिसमें हवा न आवे यह त्रिगुणाख्यरस ४५ दिनमें कंपावातको दूर कर देता है ॥ १७२-१७५ ॥

इति त्रिगुणाख्यो रसः।

अथ वातारिरसः।

सूतहाटकवज्राणि तारं लोहं च माक्षिकम्।
तालं नीलांजनं तुत्थमब्धिफेनं समांशकम् ॥१७६॥
पंचानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत्।
वज्रक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पुटेत् ॥ १७७ ॥
माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम्।
पिप्पलीमूलजं क्वाथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥ १७८ ॥

सर्ववातविकारांस्तु निहंत्याक्षेपकादिकान्।
रसः सर्वत्र विख्यातो नाम्ना वातारिपुः स्मृतः १७९॥

पारेकी भस्म, हीरेकी भस्म, रूपे, लो॰ और सोनामक्खीकी भस्म, हरिताल, नीलांजन, नीलाथोथा, समुद्रफेन ये सब समान भाग ले और एक भाग पांचों नोन लेकर एक दिन थूहरके दूधमें खरल करे फिर भूधरयंत्रद्वारा पचावे एकमासेकी गोली बनावे इस वातारिरसको अदरखके रसके साथ चाटे ऊपरसे पीपलामूलका काढा पीपल डालके ले यह रस सब वातजन्य विकारोंको और आक्षेपादिकोंको दूर करता है ॥ १७६-१७९ ॥

इति वातारिरसः।

अथ वातगजांकुशरसः।

मृतं लोहं सूतगंधं ताम्रतालकमाक्षिकम्।
पथ्यां शृंगीविषं त्र्यूषमाग्निमंथं च टंकणम् ॥ १८० ॥
तुल्यं खल्वे दिनं मर्द्यं मुंडीनिर्गुंडिजैर्द्रवैः।
द्विगुंजां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशांतये।
साध्यासाध्यं निहंत्याशु रसो वातगजांकुशः ॥१८१॥

मरा हुआ लोहा, मरा हुआ पारा, गंधक, तांबा, हरिताल, सोनामक्खी, काकडासिंगी, विष, त्रिकुटा, अरनी और सुहागा ये सब समान ले गोरखमुंडी और निर्गुंडीके रसमें एक दिन खरल करे दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे, यह वातगजांकुश रस सब प्रकारकी साध्य और असाध्य वातव्याधि खोनेमें वातरूप हाथीके लिये अंकुशके समान है इसकी एक गोली पीपलके साथ खाय ॥१८०॥१८१॥

इति वातगजांकुशो रसः।

अथाम्लपित्तनाशको रसः।

मृतसूताभ्रलोहानां तुल्यां पथ्यां विचूर्णयेत्।
माषत्रयं लिहेत्क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥ १८२ ॥

मरा पारा, अभ्रक और लोहेकी भस्म ले सबके बराबर हरड लेकर खरल करे । शहदके साथ तीन मासा चाटनेसे अम्लपित्तकी शान्ति करता है ॥ १८२ ॥

इत्यम्लपित्तनाशको रसः ।

अथाग्निकुमारो रसः ।

सूतं गंधं च नागानां चूर्णं हंसांघ्रिवारिणा ।
दिनं घर्मे विमर्द्याथ गोलिकां तस्य योजयेत् १८३॥
काचकुप्यां च संवेष्ट्य तां त्रिभिर्मृत्पुटैर्दृढम् ।
मुखं संरुध्य संशोष्य स्थापयेत्सिकताह्वये ॥ १८४॥
सार्धं दिनं क्रमेणाग्निं ज्वालयेत्तदधस्ततः ।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य षडंशेनामृतं क्षिपेत् ॥ १८५॥
मरिचान्यर्द्धभागेन समं वास्याथ मर्दयेत् ।
अयमग्निकुमाराख्यो रसो मात्रास्य रक्तिका १८६॥
तांबूलीरससंयुक्तो हन्ति रोगानमूनयम् ।
वातरोगान्क्षयं श्वासं कासं पांडुकफोल्बणम् १८७॥
अग्निमांद्यं सन्निपातं पथ्यं शाल्यादिकं लघु ।
जलयोगप्रयोगोऽपि शस्तस्तापप्रशांतये ॥ १८८ ॥

पार, गंधक और सीसेको हंसपदीकी रसमें दिनभर धूपमें रगडकर उसकी गोली बनाय काचकी आतिशी पकी शीशीमें भरदे ऊपरसे मिट्टीके तीन पुट लगावे मुखको अच्छी तरह बन्द करके सुखायके एक घडेमें बालू भरके बीचमें रखदे फिर ६ पहरतक मंद मध्यम और तेज अग्नि उसके नीचे जलावे फिर ठंढा होनेपर उतारकर छठे हिस्सेका विष डालदे फिर इसके समान अथवा आधी काली मिरच डालकर रगडा करे. यही अग्निकुमाररस तैयार होता है. पानके रसमें इनकी एक रत्तीकी मात्रा भक्षण करी हुई नीचे लिखे रोगोंको नाश करती है, वातरोग, क्षयी, श्वास, कास, पांडुरोग, कफकी अधिकता, अग्निमांद्य, सन्निपातको, दूर करता है चावल आदि हलका पथ्य. उत्तम है और तापकी शान्तिको जलका प्रयोग भी ठीक है ॥१८३–१८८ ॥

इत्याग्निकुमारो रसः

अथ लीलाविलासो रसः ।

रसो रविर्व्योमबलिः सुलोहं धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य ।
तदल्पघृष्टं मृदुमार्कवेण संमर्दयेदस्य च वल्लयुग्मम् १८९
हन्त्यम्लपित्तं मधुनावलीढं लीलाविलासोरसराजएषः ॥
दुग्धंसकूष्मांडरसंसधात्रीफलंशनैस्ततत्सहितंभजेद्वा १९०

शुद्ध पारा, तांबेका भस्म, अभ्रक, लोहभस्म व गंधक इन सबको आंवलेके रसमें तीन दिन खरल करे फिर भांगरेके रसमें मर्दन कर चार रत्तीकी गोली बनावे शहदके साथ सेवन करनेसे यह लीला-विलास रस अम्लपित्तका नाश करे है. अथवा दूध वा पेठेके रसके साथ खाय अथवा इस रसको आंवलेके साथ खाना भी उत्तम है ॥ १८४ ॥ १९० ॥

इति लीलाविलासो रसः ।

अथ मन्थानभैरवो रसः ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिंगुपुष्करमूलकम् ।
सैंधवं गंधकं तालं टंकणं चूर्णयेत्समम् ॥ १९१ ॥
पुनर्नवादेवदारुनिर्गुंडीतण्डुलीयकैः ।
तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकंमर्दयेद्दृढम् ॥ १९२ ॥

माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रे रसो मंथानभैरवः ।
कफरोगप्रशान्त्यर्थं निंबक्वाथं पिबेदनु ॥ १९३ ॥

पारेकी भस्म, तांबेकी भस्म, हींग, पुहकरमूल, सेंधानोन, गंधक, हरताल, सुहागा बराबर बराबर लेकर सांठी, बन्दाल निर्गुडी, चौलाई, कुटकी तोरईके रसमें एक २ दिन मर्दन करे फिर इस मंथानभैरव रसको एक मासे शहदमें मिलाकर चाटे ऊपरसे नीमका काढा पीवे तो कफरोग शान्त हो ॥ १९१-१९३ ॥

इति मंथानभैरव रसः ।

अथ लघ्वग्निकुमारो रसः ।

टंकणं रसगंधौ च समभागं त्रयो विषम् ।
कपर्दिसर्जिकाक्षारमागधीविश्वभेषजम् ॥ १९४ ॥
पृथक् पृथक् कर्षमात्रं त्वष्टभागं मरीचकम् ।
जम्बीराम्लैर्दिनं पिष्टं भवेदग्निकुमारकः ।
विषूचिशूलवातादिवह्निमांद्यप्रशान्तये ॥ १९५ ॥

सुहागा पारा, और गंधक समान भाग ले और तीन भाग वेलिया मीठा लेवे और कौडी, सज्जीखार, पीपल, सोंठ ये चारों एक एक कर्ष लेवे और आठ भाग कालीमिरच लेवे इन सबको जंभीरी और इमलीके रसमें दिनभर खरल करनेसे यह अग्निकुमार रस तयार होता है. विषूचिका, शूल, बादीके रोग और मन्दाग्निकी शान्तिके हेतु अत्यन्त उपयोगी है ॥ १९४॥ १९५ ॥

इति लघ्वग्निकुमारो रसः ।

अथ क्रव्यादनामा रसः ।

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्बायसी चार्द्ध-पलप्रमाणे । संचूर्ण्यसर्वं द्रुतमग्नियोगादेरंडपत्रेषु

निवेशनीयम् ॥ १९६ ॥ पिष्ट्वाऽथतांपर्पटिकां निदध्याल्लोहस्य पात्रे वरपूतमस्मिन् । जंबीरजंप-क्करसंपलानांशतंतलेस्याग्निमथाम्लमात्रम् ॥१९७॥ जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः सपंचकोलोद्भवका-रिपूरैः । सेवेतसाम्लैःशतमत्र योज्यं समंरजष्ट-कणजंसुभृष्टम् ॥ १९८ ॥ विडं तदर्द्धं मरिचं समं च तत्सप्तधाद्रं चणकाम्लवारा । क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसः सुमंथानकभैरवोक्तः । माषद्वयं सैंधवतक्रपीतमेतस्यधन्यैःखलुभोजनान्ते॥१९९॥ गुरूणिमांसानिपयांसि पिष्टीकृतानि खाद्यानिफ-लानि वेगात् नाम्नातिरिक्तान्यपि सेवितानि याम-द्वयाज्जारयतिप्रसिद्धः ॥२००॥

पारा चार तोले, गंधक ८ तोले, तांबेकी भस्म दो तोले, और लोहेकी भस्म दो तोले इन सबको मिलाय खरल करे फिर थोडांशी आग देकर अंडीके पत्तोंमें रखदे फिर अच्छे साफ लोहेके पात्रमें रख पर्पटीके सदृश करे फिर इसमें सौ पल जंभीरीका रस डालदे नीचे मंदी आग जलावे, इस रसके सूखनेपर फिर पचास पल पंच-कोलका काढा और ५० पल अमलतासका काढा डालदे और आठ तोले फूला हुआ सुहागा और चार तोले काचका नोन और इतनी ही कालीमिरच मिलादे और फिर चनेके खारकी सात भावना देनेसे सुमंथानभैरवका कहा हुआ क्रव्यादनाम रस तयार होता है दो मासे रस सेंधेनमक और मठके साथ भोजनके अन्तमें खाय. भारी मांस दूध पिष्टपदार्थ और खाद्य फल खाय अधिक भोजनको भी यह रस दोपहरमें पचा देता है ॥ १९६-२०० ॥

इति क्रव्यादनामा रसः ।

अथाग्नितुंडी वटी ।

शुद्धं सूतं समं गंधमजमोदाफलत्रयम् ।
सर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैंधवजीरकम् ॥ २०१ ॥
सौवर्चलं विडंगानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ।
विषं मुष्टं सर्वतुल्यं जंबीराम्लेन मर्दयेत् ॥ २०२ ॥
मरिचाभां वटीं खादेद्वह्निर्मांद्यप्रशान्तये ॥ २०३ ॥

शुद्ध पारा और इतनीही गंधक, अजमोद, त्रिफला, सज्जीखार, जवाखार, चीता, सेंधानोन, जीरा, संचरनोन, वायविडंग, समुद्र-नोन और त्रिकुटा ये सब समान भाग ले और सबकी बराबर कुचला लेकर सबको जंमीरी और खटाईमें खरल करे कालीमिरचके समान गोली बनाकर खाय तो जराठाग्निको तेज करे यह अग्नितुंडी वटी-नाम रस है ॥ २०१-२०३ ॥

इत्यग्नितुंडीवटी ।

अथ आनन्दोदयरसः ।

पारदं गंधकं लोहमभ्रकं विषमेव च ।
समांसं मरिचं चाष्टौ टंकणं च चतुर्गुणम् ॥ २०४ ॥
भृंगराजरसैः सप्त भावनाश्चाम्लदाडिमैः ।
गुंजाद्वयं पर्णखंडैर्हन्ति सायं तु भक्षितः ॥ २०५ ॥
वातश्लेष्मोद्भवान्रोगान्मंदाग्निग्रहणीज्वरान् ।
अरुचिं पांडुतां चैव जयेदचिरसेवनात् ॥ २०६ ॥

पारा, गंधक, लोहा, अभ्रक, मीठातेलिया ये सब बराबर बराबर ले अठगुनी मिरच और चौगुना सुहागा इन सबको खरल कर भांगरेके रस और खट्टे अनारके रसकी सात भावना दे इसकी दो रत्ती सायंकाल पानके संग खानेसे बादी और कफ रोगको, मंदाग्निको, संग्रहणीको, ज्वरको, अरुचिको और पांडुरोगको शीघ्रही दूर कर देती है ॥ २०४-२०६ ॥

इति आनन्दोदय रसः ।

अथ महोदधिवटी ।

एकैकं विषसूतं च जाता टंकं द्विकं द्विकम् ।
कृष्णात्रकं विश्वषट्कं दुग्ध कपर्दिकाद्विकम् ॥ २०७॥
देवपुष्पं बाणमितं सर्वं संमर्द्य यत्नतः ।
महोदध्याख्यवटिका नष्टस्याग्नेश्च दीपनी ॥२०८॥

विष और पारा एक २ भाग, जायफल और सुहागा दो दो भाग, पीपल तीन भाग, सोंठ छः भाग, और कौडीकी भस्म दो भाग तथा लौंग पांच भाग इन सबको घोटले फिर उडदकी बराबर गोली बनावे इसका सेवन नष्ट भई अग्नि दीपन करनेवाला है॥२०७॥२०८॥

इति महोदधिवटी ।

अथ चिन्तामणि रसः ।

रसं गंधं मृतं शुल्वं मृतमभ्रं फलत्रिकम् ।
त्र्यूषणं बीजजैपालं समं खल्वे विमर्दयेत् ॥ २०९॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तद्वस्त्रगालितम् ।
चिंतामणिरसोऽप्येष अजीर्णानां प्रशस्यते ॥ २१० ॥
ज्वरमष्टविधं हंति सर्वशूलेषु शस्यते ।
गुंजैको वा द्विगुंजो वा आमरोगहरः परः ॥२११॥

पारा, गंधक, तांबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, त्रिफला; सोंठ, मिरच, पीपल, जमालगोटेके सोधे हुए बीज इन सबको बराबर लेकर द्रोणपुष्पीके रससे खरल करे फिर कपडेमें छाने इसकी एक या

दो रत्तीकी गोली बनावे यह चिन्तामणि रस अजीर्णमें हितकारक आठ प्रकारके ज्वर तथा सब प्रकारके शूलको खोवे और आमरोगमें तो यह अद्वितीय रस है ॥ २०९-२११ ॥

इति चिन्तामणिरसः ।

अथ राजवल्लभरसः ।

रसनिष्कैकगंधैकं निष्कमात्रः प्रदीपनः ॥ २१२ ॥
सार्द्धं पलं प्रदातव्यं चूलिकालवणं भिषक् ।
खल्वे संमर्दयेत्तत्तु शुष्कवस्त्रेण गालयेत् ॥ २१३ ॥
माषमात्रं प्रदातव्यो भुक्तमांसादिजारकः ।
अजीर्णेषु त्रिदोषेषु देयोऽयं राजवल्लभः ॥ २१४ ॥

पारा ४ मासे, गंधक ४ मासे विष ४ मासे और नौसादर ६ तोले इन सबको ले कूट पीस कपडछान कर एक एक मासेकी गोली बनावे यह राजवल्लभरस खाये हुए मांसकी भस्म करता है अजीर्ण और त्रिदोषमें यह देना चाहिये ॥ २१२-२१४ ॥

इति राजवल्लभरसः ।

अथ त्रिनेत्राख्यो रसः ।

टंकणं हारिणं शृंगं स्वर्णं शुल्वं मृतं रसम् ।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ २१५ ॥
त्रिनेत्राख्यो रसो नाम्ना माषकं मधुसर्पिषा ।
सैंधवं जीरकं हिंगुमध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ।
पंक्तिशूलहरं ख्यातं याममात्रान्न संशयः ॥ २१६ ॥

सुहागा, हिरणका सींग, सोना, तांबा और पारेकी भस्म दिनभर अदरखके रसमें खरल करे फिर शरावसंपुटमें रख फूंकदे

फिर एक मासा शहद और घीके साथ खावे ऊपरसे सेंधानमक, जीरा, हींग, शहद और घी मिलाकर चाटे यह त्रिनेत्राख्यरस पहर भरमें शूलका नाश करता है ॥ २१५ ॥ २१६ ॥

इति त्रिनेत्राख्यो रसः ।

अथ मेहवज्रो रसः ।

भस्म सूतं मृतं कांतं शुल्वभस्म शिलाजतु ।
शुद्धताप्यं शिला व्योषं त्रिफला कोल्लबीजकम् २१७
कपित्थरजनीचूर्णं भृंगराजेन भावयेत् ।
विंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा ॥२१८॥
निष्कमात्रं लिहेन्मेही मेहवज्रो महारसः ।
महानिम्बस्य बीजानि पिष्ट्वा कर्षमितानि च॥२१९॥
पलं तण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ।
एकीकृत्य पिबेत्तायं हन्ति मेहं चिरन्तनम् ॥२२०॥

पारेकी भस्म, कांतलोहकी भस्म, तांबेकी भस्म, शिलाजीत, सुवर्णमक्खीकी भस्म, मनशिला, त्रिकुटा, त्रिफला, अंकोलके बीज कैथ, हलदीका चूर्ण ये सब बराबर लेकर भांगरेके रसमें बीस बार भावना दे इस मेहवज्र रसको चार मासे शहदके संग चाटे ऊपरसे बकायनके बीज एक कर्ष पीसकर ४ तोले चावलके पानी और आठ मासे घीके साथ मिलाहुआ पानी पीनेसे प्राचीन प्रमेहका नाश करता है ॥ २१७-२२० ॥

इति मेहवज्रो रसः ।

अथ इन्द्रवटीरसः ।

मृतं सूतं मृतं वंगमर्जुनस्य त्वचा सिता ।
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे शाल्मल्या मर्दयेद्द्रवैः॥२२१॥

दिनान्ते वटिका कार्या माषमात्रा प्रमेहह ।
एषा इन्द्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशान्तये ॥ २२२ ॥

पारे और रांगकी भस्म, कोहकी अथवा अर्जुनकी छाल मिश्री ये सब बराबर ले सेमरकी जडके रससे खरल कर सायंकालको एक मासेकी गोली बनाकर खावे यह इन्द्रवटी गोली मधुमेहको नाश करनेवाली है ॥ २२१ ॥ २२२ ॥

इति इन्द्रवटीरसः ।

अथ रसेन्द्रमंगलरसः ।

तालतत्त्वं मृतं ताम्रं मृतं लोहं मृतं रसम् ।
हतमभ्रं हतं तारं गंधं तुल्यं मनःशिला ॥ २२३ ॥
सौवीरांजनकासीसं नीलभल्लातकानि च ।
शिलाजत्वर्कमूलं तु कदलीकंदचित्रकम् ॥ २२४ ॥
त्वचमंकोलजां कृष्णां कृष्णधत्तूरमूलकम् ।
अवल्गुजानि बीजानि गौरीमाध्वीफलानि च२२५॥
हेमाह्वां फेनजात्यां च फालिनीं विषतिंदुकाम् ।
तैलिन्यो लोहकिट्टं च पुराणममृतं च तत्॥२२६॥
त्वचा च मीनकाक्षस्य पुनरुक्तं फलं पृथक् ।
तैलिन्यो वटकास्तासु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ २२७॥
खल्वे निधाय दातव्या पुनरेषा च भावना ।
ब्रह्मदण्डी शिखापुंखा देवदाली च नीलिका२२८॥
वानशोना नृपतरुर्निंबसारो बिभीतकः ।
करंजो भृंगराजश्च गायत्री तिंतडीफलम् ॥ २२९ ॥
मलयूमूलमेतेषां तिस्रस्तिस्रस्तु भावनाः ।
दातव्या कुप्पिकां कृत्वा सम्यक् संशोष्य चातपे२३०

भांडे तद्धारयेद्भांडं मुद्रितं चाथ कारयेत् ।
यामं मन्दाग्निना पच्यात्पुटमध्ये ह्यसौ रसः॥२३१॥
पुंडरीकं निहन्त्येव नात्र कार्या विचारणा ।
द्विमासाभ्यंतरे पुंसामपथ्यं न तु भोजयेत् ॥२३२॥
रोगाः सर्वे विलीयंते कुष्ठानि सकलानि च ।
भानुभक्तिप्रवृत्तानां गुरुभक्तिकृतां सदा ॥ २३३ ॥
रसेन्द्रमंगलो नाम्ना रसोऽयंप्रकटीकृतः ।
अनुग्रहाय भक्तानां शिवेन करुणात्मना ॥ २३४ ॥

हरतालसत्त्व, तांबेकी भस्म, लोहभस्म, पारेकी भस्म, अभ्रक भस्म, रूपेकी भस्म, गंधक, नीलाथोथा, मनशील, सहँजना, कसीस. नील मिलावे, शिलाजीत, आककी जड, कदलीकन्द, चीता, दाल, चीनी, अंकोल, काले धतूरेकी जड, चिरमिठी, तुलसी, महुएके फल चोकफेन, जाती, फालिनी विषतिन्दु, तेलिया कोटी (पुराणी जिसकी भस्म न हुई हो) मछेछीकी छाल इन सबको इकट्ठी करके खरल करे फिर ब्रह्मदंडी, सरफोंका, बंदाल, नीलिका वा नशोत, अमलतासका गूदा नीमसार, बहेडा, कंजा, भांगरा, खैर, इमलीके कटारे, इनकी भावना दे फिर एक हंडियामें भरके उस हँडियाको हंडियामें रख दे और मुहपै कपडमिट्टी करदे और पहरभरतक आंच दे तौ यह रस पुंडरीक कोढको आराम करता है दो महीनेतक पथ्यसे रहै सम्पूर्ण रोग सब प्रकारके कोढ दूर होजाते हैं सूर्यके भक्तों और गुरुसेवकोंके हेतु शिवजीने कृपा करके रसेन्द्रमंगल नाम यह रस प्रकट किया है ॥ २३३--२३४ ॥

इति रसेंद्रमंगलो रसः ।

अथ सर्वेश्वरो रसः ।

मृतताम्राभ्रलोहानां हिंगुलं च पलंपलम् ।

जंबीरोन्मत्तभार्ङ्गीभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ॥२३५॥
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकं च दिनंदिनम् ।
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ॥ २३६ ॥
वालुकायंत्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ।
आदाय चूर्णयेत्सर्वं पलैकं योजयेद्विषम् ॥ २३७ ॥
द्विपलं पिप्पलीचूर्णमिश्रं सर्वेश्वरं रसम् ।
द्विगुंजं लेहयेत्क्षौद्रैःसुप्तिमण्डलकुष्ठनुत् ॥ २३८ ॥
वाकुची चैव दारू च कर्षमात्रं विचूर्णितम् ।
लिहेदेरण्डतैलेन ह्यनुपानं सुखावहम् ॥ २३९ ॥
रक्ताधिक्ये शिरामोक्षः पादे बाहौ ललाटके ।
कर्तव्यो दृष्टिरोगेषु कुष्ठिनां च विशेषतः ॥ २४०
बलिनो बहुदोषस्य वयस्थस्य शरीरिणः ।
एतत्प्रमाणमिच्छन्ति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥२४१॥
व्यभ्रे वर्षासु विद्यात्तु ग्रीष्मकाले तु शीतले ।
हेमन्तकाले मध्याह्ने शस्त्रकालास्त्रयः स्मृताः २४२॥

मरा हुआ तांबा, अभ्रक, लोह और सिंगरफ चारों एक एक पलको जंमीरी, धतूरा, भारंगी, सेहुंड, आक, पोस्तके डोडा और कनेर इन सबके रसमें एक एक दिन मर्दन करे ऐसे सात दिन पीछे गोला बनाय उसके चारों ओर वस्त्र लपेट वालुकायंत्रद्वारा तीन दिनतक मन्दी मन्दी आगसे स्वेदन करे फिर दो पल पीपलका चूर्ण मिला देनेसे यह सर्वेश्वररस तैयार होता है इसकी दो रत्ती शहदके साथ चाटनेसे कोढके चकत्तोंको आराम करता है और बाकुची और देवदारु कर्षभर अंडीके तेलके साथ चाटे, रक्तकी अधिकतामें

पांव बाहु अथवा ललाटमें फस्द लगाकर खून निकालदे आंखकी बीमारीवालोंके यह काम करे, बलवान् बहुत दोषोंकरके युक्त, जवान मनुष्योंके प्रस्थभर रुधिर निकालदे बादल न होय जब तो वर्षाऋतुमें ठंढके समय गरमीमें हेमन्तमें दुपहरके समयनस्तर लगवावे२३५-२४२

इति सर्वेश्वरो रसः ।

अथ तालेश्वरो रसः ।

द्वादशं कर्षतालं च कूष्मांडस्वरसे क्षिपेत् ।
स्वेदयेद्दोलकायंत्रे यावत्तोयं न विद्यते ॥ २४३ ॥
पश्चात्तं मेलयेत्खल्वे सूतं कर्षद्वयं क्षिपेत् ।
तन्मर्द्यं बहुवाराणि नीलाभा कज्जली भवेत्॥२४४॥
स्नुहीक्षीरं रविक्षीरं छागीक्षीरं च वाकुची ।
पातालगरुडी कोह्ला चक्रमर्दकहिज्जलम् ॥ २४५ ॥
कुमारीपत्रभल्लाता त्रिफला तु पुनर्नवा ।
निंबत्वचं महौषध्याः पुटं देयं त्रयं त्रयम् ॥ २४६ ॥
पट्कर्षं चूर्णकालिकां हंडिकायां तु धापयेत् ।
चतुर्थांशमधः स्थाप्य मध्ये स्थाप्यं तु तालकम् २४७
पश्चादुपरि चूर्णं तत्सर्वं स्थाप्यं प्रयत्नतः ।
हांडकाखंडपर्यन्तं मज्जानं कन्यकाद्रवम् ॥ २४८ ॥
ततो मुद्रां दृढं कुर्याद्भूयोऽस्य योषितां किल ।
चतुर्यामं तु दीपाग्निं विद्याद्यामं हुताग्निना ॥ २४९॥
स्वांगशीतलमुद्धृत्य भवेत्तालेश्वरो रसः ।
पथ्यं मुद्गं तु शाल्यन्नं कुष्ठानष्टादशाञ्जयेत् ॥२५०॥

बारह कर्ष हरितालको पेठेके रसमें डालकर दोलायन्त्रद्वारा

स्वेदनकरे जबतक पानी रहे फिर दो कर्ष पारा डालकर खरल करे यहांतक कि,नाल रंगकी कजली तयार हो जाय फिर सेंहुंडका दूध, आकका दूध, बकरीका दूध बाकुची, छिरहटा, कोल्हा, चकवड, समुद्रफल, ग्वारपाठा, भिलावे, त्रिफला, सांठकी जड, नीमकी छाल और सोंठ इनकी तीन तीन भावना दे छः कर्ष चूककी लुगदी हंडियामें भरे बीचमें हरितालको रखदे फिर हांडीके गलेतक ग्वारपाठेका गूदा भरदे फिर कपडमिट्टी कर सुखायले फिर चार पहर तेज आग और पहरभर मन्दी आगदे ठंढा होनेपर उतारले यह जो तालेश्वररस है कोढको दूर करता है इसपर मूंग और चावलका पथ्य करनेसे अठारह प्रकारके कोढोंको दूर करता है ॥ १४३–२५० ॥

इति तालेश्वरो रसः ।

अथ स्वर्णक्षीरीरसः ।

हेमाह्वां पंचपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघटे पचेत् ॥२५१॥
क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत् ।
तक्रे जीर्णे समुद्धृत्य क्षालयित्वा विशोषयेत्॥२५२॥
चूर्णितं तत्पंचपलं मरिचानां पलद्वयम् ।
पलकं मूर्च्छितं सूतमेकीकृत्वा च भक्षयेत् ।
निष्कैकं सुप्तिकुष्ठारिः स्वर्णक्षीरीरसो ह्ययम्॥२५३॥

पांच पल धतूरेके बीज मठेके घडेमें डालदे मठेके सूखनेपर निकालकर दूधमें डालदे दूध कम होजानेपर निकालकर सुखाले उसमें दो पल कालीमिरच और एक पल मराहुआ पारा डालकर मर्दन करले इसकी एक निष्ककी मात्रा सुप्तिकुष्ठको दूर करती है॥२५१–२५३॥

इति स्वर्णक्षीरीरसः ।

अथ शूलगजकेशरीरसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम् ।

द्वयोस्तुल्यं भस्म ताम्रं संपुट त निरोधयेत् ॥२५४॥
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भांडे धारयेद्भिषक् ।
ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥२५५॥
संपुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखंडे द्विगुंजकं ।
भक्षयेच्छूलपीडाय हिंगुशुण्ठीसजीरकम् ॥ २५६ ॥
वचामारचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् ।
असाध्यं साधयेच्छूलं रसः स्याच्छूलकेसरी॥२५७॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च ।
वेगरोधं शुक्ररोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ २५८ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, गंधक दो भाग इनकी पहरभर कजली करे और तांबेकी भस्म दोनोंके समान लेकर शरावसंपुट कर ऊपर नीचे नमक रखकर मिट्टीके बर्तनमें रखदेवे फिर गजपुटकी आगमें पचावे ठंढा होनेपर उतारकर रखले इसकी दो रत्तीकी मात्रा पानके संग खावे ऊपरसे हींग, सोंठ, जीरा, वच, कालीमिरचका चूर्ण बना गरम जलके साथ पीवे तो यह असाध्यशूलरूप हाथीके लिये सिंहरूप रस वशमें लानेवाला है, कसरत, कुश्ती, मैथुन, मद, लवण, मिरचादि कडवी वस्तु, दस्तके वेगको रोकना, वीर्य अवरोध, इनको शूलवान् मनुष्य त्यागदे ॥ २५४–२५८ ॥

इति शूलगजकेशरीरसः ।

अथ द्वितीयतालेश्वरो रसः ।

सूतो द्वौ वल्गुजा त्रीणि कणा विश्वा त्रिकं त्रिकम्२५९
सार्द्धंकं ब्रह्मपुत्रस्य मरिचस्य चतुष्टयम् ।
एकैकं निम्बधत्तूरबीजतो गंधकत्रयम् ॥ २६० ॥
जातीटंकणतालाया भागा दश दश स्मृताः ॥

युक्त्या सर्वं विमर्द्याथामृतास्वरसभाविताः ॥२६१॥
मृतधा शोषयित्वाथ धत्तूरस्यैव दापयेत् ।
संमर्द्य गोलकं सार्द्रं धत्तूरैर्वेष्टयेद्दलैः ॥ २६२ ॥
गोमये वेष्टयेत्तच्च कुक्कुटाख्यपुटे पचेत् ।
रसः कुष्ठहरः सेव्यः सर्वदा भोजनप्रियैः ॥ २६३ ॥

दो भाग पारा, तीन भाग वल्गुजा, और तीन तीन भाग पीपल और सोंठ डेढ भाग ब्रह्मपुत्र चार भाग मिरच, एकएक भाग नीम और धतूरेके बीज, गंधक ३ भाग, जावित्री, सुहागा, हरताल ये तीनों दश दश भाग लेकर इन सबको खरल करे फिर गिलोयके रसकी भावना देकर सात बार सुखाले फिर धतूरेके रसकी भावना दे फिर अदरखके रसमें मर्दन कर गोला बनाय ऊपरसे धतूरेके पत्ते लपेट दे ऊपर गोबर लपेटदे फिर कुक्कुटयंत्रमें पकानेसे यह कोढ दूर करनेवाला रस बनाता है ॥ २५९–२६३ ॥

इति द्वितीयतालेश्वरो रसः ।

अथ ब्रह्मरसः ।

भागैकं मूर्च्छितं सूतं गंधकं वह्निवाकुची ।
चूर्णं च ब्रह्मबीजानां प्रतिद्वादशभागकम् ॥ २६४ ॥
त्रिंशद्भागं गुडस्यापि क्षौद्रेण गुटिकां कृताम् ॥
अयं ब्रह्मरसो नाम्ना ब्रह्महत्याविनाशनः ॥ २६५ ॥
द्विनिष्कभक्षणाद्धन्ति प्रसुप्तिं कुष्ठमंडलम् ।
पातालगरुडीमूलं जले पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ २६६ ॥

एक भाग पारेकी भस्म और गंधक, चीता, बावची और ढाकके बीज प्रत्येक बारह बारह भाग और गुड तीस भाग ऊपरवाली

सब औषधियोंको कूट छान गुड मिलाय शहदके संग गोली बनावे यह ब्रह्मरस ब्रह्महत्यासे उत्पन्न रोगका नाश करता है दो निष्क अर्थात् आठ मासे खानेसे प्रसुप्त कुष्ठमंडलका नाश करे ऊपरसे कडवीघीयाकी जडका शरबत पीवे ॥ २६४–२६६ ॥

इति ब्रह्मरसः ।

अथ शशिधररसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं तुल्यं च मृतताम्रकम् ।
मर्दितं वाकुचीक्वाथैर्दिनैकं वटकीकृतम् ॥ २६७ ॥
निष्कमात्रं सदा खादेच्छ्वेतघ्नेन्दुधरो रसः ।
वाकुचीतैलकर्षकं सक्षौद्रमनुपाययेत् ॥ २६८ ॥

पारा शुद्ध कियाहुआ और समान गंधक नीलाथोथा तांबेकी भस्म बाकुचीके काढेमें दिनभर खरल करे फिर तीन तीन मासेकी गोली बनावे यह शशिधररस श्वेतकुष्ठका नाश करता है । ऊपरसे एक कर्ष बाकुचीका रस शहद मिलाकर पीवे ॥ २६७ ॥ २६८ ॥

इति शशिधररसः ।

अथ पारिभद्ररसः ।

मूर्च्छितं सूतकं धात्रीफलं निम्बस्य चाहरेत् ।
तुल्यांशं खादिरक्वाथैर्दिनं मर्द्यं च भक्षयेत् ।
निष्कैकं दद्रुकुष्ठघ्नः पारिभद्राह्वयो रसः ॥ २६९ ॥

पारेकी भस्म आंवला और निबोली ये सब समान भाग ले खैरसारके काढेमें एक दिन खरल करे इसकी चार मासेकी गोली बनाकर खाय यह पारिभद्ररस दाद और कोढका नाश करता है ॥२६९ ॥

इति पारिभद्ररसः ।

अथ श्वेतारिरसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं त्रिफलाभ्रं च वाकुची ।
भल्लातं च शिला कृष्णा निंबबीजं समं समम् २७०॥

मर्दयेद्भृंगजद्रावैः शोष्यं शोष्यं पुनः पुनः ॥ २७१ ॥
इत्थं कुर्यात्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिको भवेत् ।
मध्वाज्ये खादयेन्निष्कं दंतशूलं विनाशयेत् ॥२७२॥

शुद्ध पारेके समान गंधक, त्रिफला, अभ्रक, बाकुची, मिलावे, मनशिल, नीमके बीज ये सब समान लेकर भांगरेके रसमें खरल करे जब सब रस सूख जाय फिर और रस डालकर खरल करे इसी प्रकार इक्कीस दिन करनेसे यह श्वेतारिरस बनता है इसकी मात्रा घी और शहदके साथ खानेसे दन्तशूलको नाश करती है ॥ २७०–२७२ ॥

इति श्वेतारिरसः ।

अथ कालाग्निरुद्ररसः ।

सूताभ्रं ताम्रतीक्ष्णानां भस्म माक्षिकगंधकम् ।
वंध्याकर्कोटकीद्रावे रसो मर्द्यो दिनावधि ॥ २७३ ॥
वंध्याकर्कोटकीकंदे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः ।
भूधराख्ये पुटे पाच्य दिनैकं तु विचूर्णयेत् ॥२७४ ॥
दशमांशं विषं योज्यं मापमात्रं च भक्षयेत् ।
रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्प्पनुत् ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तं ह्यनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ २७५ ॥

शुद्ध पारा और गंधक, अभ्रक, तांबा, लोहा और सोनामक्खी इन सबकी भस्म बराबर लेवे फिर दिनभर बांझककोंटीके रसमें मर्दन करे फिर बांझककोंटीकी जडमें रख ऊपरसे कपडमिट्टी करदे फिर एक दिन भूधरयंत्रमें पचावे फिर इस रसका दशवां भाग सींगियाविषमें मिलादे और मासे भरकी मात्रा करे यह कालाग्निरुद्ररस दस दिनमें विसर्परोगको दूर करे इसके ऊपर शहद और पीपल मिलाकर ले ॥ २७३–२७५ ॥

इति कालाग्निरुद्ररसः ।

अथ मकरध्वजरसः ।

स्वर्णादष्टगुणं सूतं मर्दयेद्द्विगुणगंधकम् ॥ २७६ ॥
रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्याश्च त्रिदिनं ततः ।
मुखं काचघटे रुद्ध्वा वालुकायंत्रगं हठात् ॥ २७७ ॥
भस्म कुर्याद्रसेन्द्रस्य नवार्ककिरणोपमम् ।
भागोऽस्य भागाश्चत्वारः कर्पूरस्य सुशोभनाः२७८॥
लवंगं मरिचं जातीफलं कर्पूरमात्रया ।
मेलयेन्मृगनाभिं च मद्याणकमितां ततः ॥ २७९ ॥
श्लक्ष्णपिष्टो रसः श्रीमाञ्जायते मकरध्वजः ।
वल्लं वल्लद्वयं वास्य ताम्बूलदलसंयुतम् ॥ २८० ॥
भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं लघुमांसमवातुलम् ।
शृतं शीतं सितायुक्तं दुग्धं गोधूममाज्यकम्॥२८१॥
माषाश्च पिष्टमपरं मंद्यानि विविधानि च ।
करोत्यग्निबलं पुंसां वलीपलितनाशनः ॥ २८२ ॥
मेधायुःकान्तिजनकः कामोद्दीपनकृन्महान् ।
अभ्यासात्साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः२८३॥
रतिकाले रतान्ते वा पुनः सेव्यो रसोत्तमः ।
मदहानिं करोत्येष प्रमदानां सुनिश्चितम् ॥२८४॥
कृत्रिमं स्थावरविषं जंगमं विषवारिजम् ।
न विकाराय भवति साधकेन्द्रस्य वत्सरात्॥२८५॥
मृत्युंजयरसाभ्यासान्मृत्युं जयति देहभृत् ।
तथायं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥ २८६ ॥

१ मत्स्यानि इत्यपि पाठः ।

सुवर्णके वरक १ तोला, पारा आठ तोले, गंधक सोलह तोले इन तीनोंकी कजली करे फिर कपासके लाल फूलोंको मर्दन करे फिर तीन दिन ग्वारपाठेके रसमें मर्दन करे फिर इसको कोंचकी मातिशी शीशीमें भरकर मुख बन्द करके बालुकायंत्रमें मंद मध्यम और तेज. आगसे पकावे ठंढा होनेपर लाल लाल नलीको निकालले फिर इसके एक भागमें चार भाग कपूर, चार भाग लौंग, चार भाग कालीमिरच, चार भाग जायफल और छः मासे कस्तूरी डालकर सबको खरल कर पक्की शीशीमें भर रक्खे इस प्रकार यह मकरध्वज रस तैयार होता है इसको बलप्रमाण दो रत्ती तथा चार रत्तीकी मात्रा पानमें धरकर खाय इसपर मधुर और हलका मांस खाय अधौटा दूध मिश्री डालकर पीवे गेहूंके पदार्थ घीसहित खाय उडदकी दालके लड्डू इत्यादिक और अनेक प्रकारके मयमी पीवे यह रस बलकारक है । बालोंको सफेद नहीं होने देता, बुद्धि आयु और कान्तिका बढाने-वाला है, कामोद्दीपक है, अभ्यासपूर्वक इसका सेवन करनेवाला नित्य सौ स्त्रियोंको जीत लेता है यह रस मैथुन करते समय खानेसे निश्चय स्त्रियोंके गर्वको दूर करता है कृत्रिम, स्थावर, जंगम वा पानीके विष इस रसके सेवन करनेवालोंको नहीं सता सकते । जैसे मृत्युंजयकी सेवासे जरा मरण दूर होते हैं उसी प्रकार इस रसके सेवनसे मृत्यु छूट जातीहै ॥ २७६–२८६ ॥

इति मकरध्वज रसः ।

अथ मदनकामदेवो रसः ।

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रं च सूतगंधकम् ।
लोहं च क्रमवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया ॥ २८७ ॥
विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत्काचमये घटे ।
मुद्रितं पिठरीमध्ये धारयेत्सैंधवैर्भृते ॥ २८८ ॥

पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत् ।
वह्निं शनैः शनैः कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत् ॥२८९॥
स्वांगशीतं च संचूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः ।
अश्वगंधा च कंकोली वानरी मुशली क्षुरः ॥२९०॥
त्रिवेलस्वरसं भाव्यं शतावर्या विभावयेत् ।
पद्मकंदकसेरूणां रसे कासस्य भावयेत् ॥ २९१ ॥
कस्तूरीव्योषकर्पूरैः कंकोलैलालवंगकम् ।
पूर्वचूर्णादष्टमांशमितच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥ २९२ ॥
सर्वैः समां शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितं ददेत् ।
गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेविनः ॥ २९३ ॥
अस्य प्रभावात्सौन्दर्यं बलं तेजो विवर्धते ।
तरुणी रमते बह्वीर्वीर्यहानिर्न जायते ॥ २९४ ॥

मराहुआ रूपा, मराहुआ हीरा, मराहुआ सुवर्ण और तांबा, शुद्ध पारा गंधक और मरेहुए लोहेकी क्रमसे बढी हुई मात्रा ले अर्थात् रूपा एक भाग, हीरा दो भाग, सुवर्ण तीन भाग, तांबा चार भाग, इसी तरह औरभी जानो. इन सबको ले खरलमें मिलाय घीकुवारके रसमें खरल कर कॉंचकी शीशीमें भर अच्छी तरह मुँह बन्द कर कपड-मिट्टी करके सुखायकर सेंधेनमकसे भरी हुई हंडियाके बीचमें धर ऊपरसे दूसरी हंडियाकी खाम लगाय चूल्हेपै धर एक दिनभर मंदी मंदी आगसे पकावे फिर ठंढी होनेपर उतारकर आकके दूधकी भाव-ना दे फिर असगंध, कंकोल, कौंच, मुसली, तालमखाने और शता-वरीके रसकी पृथक् २ तीन २ भावना दे फिर कमलकसेरू और कॉंसके रसकी एक एक भावनादे फिर कस्तुरी, सोंठ, मिरच, पीपल, कपूर, कंकोल, इलायची, लौंग ये सब पहिले चूर्णसे आठवें हिस्सेके ले फिर

सबके बराबर सफेद मिश्री मिलावे फिर शाण अर्थात् ४ मासे यह चूर्ण आध पाव गौके दूधके साथ खाय और हलका भोजन जैसे–भात मिश्री, दूधका करे तो इसके प्रभावसे सुन्दरता, बल, तेज बढे, बहुतसी स्त्रियोंसे विहार करे, वीर्यकी हानी कमी न होय ॥ २८७–२९४ ॥

इति मदनकामदेवो रसः ।

अथ पूर्णेन्दुरसः ।

शाल्मल्युत्थैर्द्रवैर्मर्द्यं पक्षैकं शुद्धसूतकम् ।
यामद्वयं पचेदाज्ये वस्त्रे बध्वाथ मर्दयेत् ॥ २९५ ॥
दिनैकं शाल्मलिद्रावैर्मर्दयित्वा वटीं कृताम् ।
वेष्टयेन्नागवल्ल्या च निःक्षिपेत्काचभाजने ॥२९६॥
भाजनं शाल्मलीद्रावैः पूर्णं यामद्वयं पचेत् ।
वालुकायंत्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत् ॥ २९७ ॥
द्विगुंजं भक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीदलांतरे ।
मुशलीं ससितां क्षीरैः पलैकं पाचयेदनु ॥ २९८ ॥
रसपूर्णेन्दुनामायं सम्यग् वीर्यकरो भवेत् ।
कामिनीनां सहस्रैकं नरः कामयते ध्रुवम् ॥ २९९ ॥

सेमरकी जडके रसमें शुद्ध पारेको पन्द्रह दिनतक मर्दन करे फिर कपडेमें बांधकर दो पहरतक घीमें पकावे फिर पोटलीको निकाल सेमरके रसमें फिर मर्दन कर पानके रसमें खरल कर काचकी शीशीमें भरदे और शीशीमें ऊपरतक सेमरके कन्दका रस भरदे फिर शीशीको वालुकायंत्रमें भर दो पहर तक पकावे रसके जलजानेपर उतारले इस प्रकार तैयार होनेपर दो रत्ती पानमें रस प्रातःकाल प्रतिदिन खाय ऊपरसे आधा पल मुसली और उतनीही मिश्री मिलाय गौके

दूधके संग पीले यह पूर्णेन्दुनाम रस वीर्यको बढानेवाला अत्यन्त पराक्रम करनेवाला है ॥ २९५–२९९ ॥

इति पूर्णेन्दुरसः ।

अथ कामिनीमदभंजनो रसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं त्र्यहं कह्लारजद्रवैः ।
मर्दितं वालुकायंत्रे यामं संपुटगं पचेत् ॥ ३०० ॥
रक्तागस्तिद्रवैर्भाव्यं दिनैकं तु सितायुतम् ।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम् ॥३०१॥

शुद्ध पारा और उतनीही गंधकको तीन दिन एक कह्लारीके रसमें मर्दन कर काचकी शीशीमें भर संपुट लगाय वालुकायंत्रमें पकावे फिर लाल अगस्तके रससे एक दिन मर्दन करे फिर मिश्रीके संग प्रातःकाल दो रत्ती खायकर गायका दूध पीवे तो सौ स्त्रियोंसे भोग करनेकी सामर्थ्य होय ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥

इति कामिनीमदभंजनो रसः ।

अथ मदनोदयो रसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं रक्तोत्पलदलद्रवैः ।
यामं मर्द्यं पुनर्गंधं पूर्वार्द्धं विनिःक्षिपेत् ॥ ३०२ ॥
दिनैकं मर्दयेत्तत्तु पुनर्गंधं च मर्दयेत् ।
पूर्वद्रावैर्दिनैकं तु काचकुप्यां निरुध्य च ॥ ३०३ ॥
दिनैकं वालुकायंत्रे पक्वमुद्धृत्य भक्षयेत् ।
पंचगुंजा सिता सार्द्धं रसोऽयं मदनोदयः ॥ ३०४ ॥
समूलं वानरीबीजं मुशली शर्करासमम् ।
गवां क्षीरेण तत्पेयं पलार्द्धमनुपानकम् ॥ ३०५ ॥

शुद्ध पारा और उतनीही गंधक दोनोंकी कजली कर लालकमलके पत्तोंके रसमें पहरभर खरल करे पहिलेसे आधी गंधक डाल-

कर लालकमलके पत्तोंके रससे मर्दन करे फिर गंधक देकर फिर उसीके रसमें मर्दन करे एक दिनतक इसी प्रकार करता रहे फिर काचकी आतिशी शीशीमें भरकर सात कपडमिट्टी कर वालुकायंत्रमें एकदिन पकावे फिर ठंढा होनेपर उतारकर इस मदनोदयरसमेंसे पांच रत्ती मिश्रीके साथ खाय ऊपरसे कौंचकी जड और बीज मुसली और उतनीही खांड मिलाकर दो तोले फांक ले ऊपरसे गौके दूधको पीवे ॥ ३०२–३०५ ॥ -

इति मदनोदयोरसः ।

अथ अनंगसुंदरो रसः ।

पलद्वयं द्वयं शुद्धं पारदं गन्धकं तथा ।
मृतहेमस्तु कर्षकं पलकं मृतताम्रकम् ॥ ३०६ ॥
मृततारं चतुर्निष्कं मर्द्यं पंचामृतैर्दिनम् ।
रुद्धा तु वै पुटे पश्चाद्दिनैकं तु समुद्धरेत् ॥ ३०७ ॥
पिष्ट्वा पञ्चामृतैः कुर्याद्वटिकां वदराकृतिम् ।
अनंगसुन्दरो नाम परं पुष्टिप्रदायकः ॥ ३०८ ॥

दो पल शुद्ध पारा और एक पल गंधक, एक कर्ष सुवर्णकी भस्म, एक पल तांबेकी भस्म, चार कर्ष रूपेकी भस्म, चार इन सबको पंचामृतमें मर्दन कर वालुकायंत्रद्वारा उडाले फिर पंचामृतमें मर्दन कर बेरके समान गोली बनाले तो यह अनंगसुन्दररस बहुत पुष्टि-कारक तैयार होता है ॥ ३०६–३०८ ॥

इति अनंगसुन्दरोरसः ।

अथ कामेश्वरो रसः ।

सम्यङ्मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगंधाऽमृता
मेथी मोचरसो विदारिमुशली गोक्षुरकं क्षूरकम् ।
रम्भाकन्दशतावरी ह्यजमुदा माषास्तिला धान्यकं

ज्येष्ठीनागबला कचूरमदनं जातीफलं सैंधवम् २०९ ॥
भार्ङ्गी कर्कटशृंगिका त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवा गजकणाद्राक्षासमं वासकम् ।
बीजं मर्कटिशाल्मलीत्रिफलकं चूर्णं समं कल्पयेत्
कर्षार्द्धा गुटिकावलेहमथवा सेव्यं सदा सर्वथा २१०
पेयं क्षीरसिता तु वीर्यकरणं स्तम्भोप्ययं कामिनी-
रामावश्यकरं सुखातिसुखदं प्रौढांगनाद्रावकम् ।
क्षीणे पुष्टिकरं क्षये क्षयहरं सर्वामयध्वंसनं
कासश्वासमहातिसारशमनं मन्दाग्निसंदीपनम् २११
धातोर्वृद्धिकरं रसायनवरं नास्त्यन्यदस्मात्पर-
मर्शांसि ग्रहणीप्रमेहनिचयश्लेष्मातिरक्तप्रणुत् ।
नित्यानंदकरं विशेषविदुषां वाचां विलासोद्भव-
मभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात् ।
सर्वेषां हितकारको निगदितः श्रीवैद्यनाथेन यः २१२

अभ्रककी भस्म, कायफल, कूठ, असगंध, गिलोय, मेथी, मोचरस, बिदारीकन्द, स्याहमुसली, गोखरू, तालमखाना, केला-कन्द, शतावरी, अजमोद, उडद, तिल, धनियां, बडी गंगेरन, कचूर मैनफल, जायफल, सेंधानमक, भारंगी, काकडाशींगी, त्रिकुटा, दोनों जीरे, चीता, चातुर्जात, सांठीकी जड, गजपीपल, दाख, अडूसा, कौंचके बीज, सेमर, त्रिफला इन सबको समान ले खरल करे इसमेंसे आधी कर्षकी गोली अथवा चटनी, प्रतिदिन सेवन करे. ऊपर मिश्री और दूध पीनेसे वीर्यको बढाता है, स्तंभन करता है, स्त्रियोंको वश करता है, सुख देनेवाला है, नवयौवनाओंको द्रवीभूत करता है, क्षीण मनुष्यको पुष्ट करनेवाला है, क्षयीको दूर करता है

और सम्पूर्ण रोगोंको दूर करता है, खांसी, श्वास, अतिसारको नष्ट करता है, मन्दाग्निको दीपन करता है, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, श्लेष्मा, और रक्तविकारोंको दूर करता है, नित्य आनन्ददायी है, रसायन है, इससे परं और कोई औषधि नहीं है, नित्य आनन्द-दायी है, विशेषकर विद्वानोंकी वाणीको लालित्य देता है, इसका सेवन वृद्धावस्थाको नहीं आने देता है, यह श्रीवैद्यनाथने सबका हितकारी कहा है ॥ ३०९-३१२ ॥

इति कामेश्वररसः ।

अथाजीर्णकंटको रसः ।

शुद्धं सूतं विषं गंधं समचूर्णं विचूर्णयेत् ।
मरिचं सर्वतुल्यांशं कंटकार्याः फलद्रवैः ॥ ३१३ ॥
मर्दयेद्भावयेत्सर्वानेकविंशतिवारकान् ।
वटीं गुंजात्रयां खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ ३१४ ॥

शुद्ध पारा, विष और गंधक ये सब समान भागले सबके समान काली मिरच लेकर चूर्ण करले फिर कटेरीके फलके रसकी इक्कीस भावना देवे और तीन रत्तीकी गोलियां बनावे तत्काल सब प्रकारके अजीर्णको दूर करे ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

इत्यजीर्णकंटको रसः ।

अथोदयभास्करो रसः ।

गंधकेन मृतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् ।
ऊषणं पंचभागं स्यादमृतं च द्विभागकम् ॥ ३१५ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं रक्तिकैकप्रमाणतः ।
दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः ॥ ३१६ ॥
गलिते स्फुटिते चैव विषूच्यां मंडले तथा ।
विचर्चिकादद्रुपामाकुष्ठाष्टकप्रशान्तये ॥ ३१७ ॥

गंधकसे मारा हुआ तांबा दश भाग, काली मिरच पांच भाग, विष दो भाग, सबको बारीक खरल कर एक एक रत्तीकी गोलियां बनावे और कोढीको अनुपानके साथ देवे तो गलितकुष्ठ, शरीरका फटना, विषूचिका, मंडलकुष्ठ, विचर्चिका, दाद, खुजली इत्यादि आठ प्रकारके कोढ दूर होवें ॥ ३१४–३१७ ॥

इति उदयभास्करो रसः ।

अथ रौद्ररसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं मर्द्य यामचतुष्टयम् ।
नागवल्लीरसैर्युक्तं मेघनादपुनर्नवैः ॥ ३१८ ॥
गोमूत्रे पिप्पली युक्त मर्द्य रुद्धा पुटेल्लघु ।
लिहेत्क्षौद्रे रसो रौद्रो गुंजामात्रोऽर्बुदं जयेत् ॥ ३१९ ॥

शुद्ध पारा और गंधक समान लेकर चार पहरतक पान चौलाई और सांठीके रसमें खरल करे फिर गोमूत्र और पीपलमें घोटकर लघु पुटमें फूंक देवे एक एक रत्तीकी गोलियां बनावे और शहदके साथ खाय यह रौद्ररस अर्बुद रोगको दूर करता है ॥ ३१८ ॥ ३१९ ॥

इति रौद्ररसः ।

अथ नित्योदितरसः ।

मृतसूतार्कलोहाभ्रविषगंधं समं समम् ।
सर्वतुल्यांशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ३२० ॥
द्रवैः सूरणकन्दोत्थैः खल्वे मर्द्य दिनत्रयम् ।
माषमात्रं लिहेदाज्ये रसश्चार्शांसि नाशयेत् ॥ ३२१ ॥
रसो नित्योदितो नाम्ना गुदोद्भवकुलांतकः ।
हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदावृषणयोस्तथा ॥ ३२२ ॥

शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्यार्शसां हितः ।
असाध्यस्यापि कर्त्तव्या चिकित्सा शंकरोदिता ३२३

पारा, तांबा, लोहा और अभ्रककी भस्म विष और गंधक ये सब समान भाग लेवे सबके बराबर मिलावेके फलोंका चूर्ण मिलाकर जमीकन्दके रससे तीन दिन खरल करे इसमेंसे एक मासे घीके साथ खाय तो यह नित्योदित रस बवासीरको दूर करे और गुदाके रोगोंको, हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा, अंडकोषकी सूजनको हृदय और पँसलीके दरदको तथा असाध्य बवासीरको दूर करता है यह शंकरोक्त चिकित्सा असाध्यकीभी करनी योग्य है ॥ ३२०-३२३ ॥

इति नित्योदितो रसः ।

अथ अर्शःकुठाररसः ।

शुद्धसूतं पलैकं तु द्विपलं शुद्धगंधकम् ।
मृतं ताम्रं मृतं लोहं प्रत्येकं तु पलत्रयम् ॥ ३२४ ॥
त्र्यूषणं लांगली दन्ती पीलुकं चित्रकं तथा ।
प्रत्येकं द्विपलं योज्यं यवक्षारं च टंकणम् ॥ ३२५ ॥
उभौ पंचपलौ योज्यौ सैंधवं पंचकं तथा ।
द्वात्रिंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरं च तत्समम् ॥ ३२६ ॥
मृदुवह्निना पचेत्सर्वं स्थाल्यां यावत्सुपिंडितम् ।
माषद्वयं सदा खादेद्रसोप्यर्शःकुठारकः ॥ ३२७ ॥

शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गंधक ८ तोले, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म प्रत्येक बारह बारह तोले, त्रिकुटा, कलिहारी, दंती, पीलू, चीतेकी छाल प्रत्येक ८ तोले, जवाखार, सुहागा प्रत्येक बीस २ तोले सेंधानमक बीस तोले, गोमूत्र पौने दो सेर और इतनाही थूहरका दूध इन सबको मिलाय एक बासनमें भर नीचे मंदी मंदी आग

जलावे जब सब मिलकर गोलासा बनजाय तब दो दो मासेकी गोलियां बनाकर खाय तो यह अर्शःकुठार रस बवासीरको दूर करता है ॥ ३२४-३२७ ॥

इत्यर्शःकुठाररसः ।

अथ विद्याधरो रसः ।

गंधकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्रं मनःशिला ।
शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्द्रावयेद्दिनम् ॥ ३२८ ॥
पिप्पल्याश्च कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ।
निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैः प्लीहगुल्मादिकं जयेत् ।
रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं च पिबेदनु ॥ ३२९ ॥

गंधक, हरिताल, सोनामक्खी, तांबेकी भस्म, मैनसिल और समान शुद्ध पारा इन सबको ले खरल करे फिर पीपलके काढे और थूहरके दूधसे एक एक दिन खरल करे इस रसमेंसे दो मासे शहदके साथ खाय और ऊपरसे गौका दूध पीवे यह विद्याधर नाम रस तापतिल्ली और वायुगोलेको दूर करता है ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥

इति विद्याधरो रसः ।

अथ वंगेश्वरो रसः ।

भस्मसूतं भस्मवंगं भागैकैकं प्रकल्पयेत् ॥ ३३० ॥
गंधकं मृतताम्रं च प्रत्येकं च चतुर्गुणम् ।
अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं सर्वं तद्गोलकीकृतम् ॥ ३३१ ॥
रुद्ध्वा तद्भूधरे पाच्यं पुटैकेन समुद्धरेत् ।
एवं वंगेश्वरो नाम्ना प्लीहगुल्मोदरं जयेत् ॥ ३३२ ॥
घृतैर्गुंजाद्वयं लिह्यान्निष्कां श्वेतपुनर्नवाम् ।
गवां मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः ॥ ३३३ ॥

पारेकी भस्म, रांगकी भस्म, प्रत्येक एक एक भाग गंधक और तांबेकी भस्म प्रत्येक चार चार भाग सबको आकके दूधमें एक दिन खरल कर गोला बनाय भूधरयंत्रमें पचावे यह वंगेश्वर नाम रस तापतिल्ली, गुल्म और उदरविकारोंको शान्त करता है इस रसको दो रत्ती घीमें मिलाकर चाटे ऊपरसे चार मासे विपलपरेका चूर्ण फाक-कर गोमूत्र पीवे अथवा हलदी फांक कर गोमूत्र पी ले॥३३०-३३३॥

इति वंगेश्वरो रसः ।

अथ उदरारिरसः ।

पारदं शुक्तितुत्थं च जैपालं पिप्पलीसमम् ।
आरग्वधफलोन्मज्जा वज्रीदुग्धेन मर्दयेत् ॥ ३३४ ॥
माषमात्रां वटीं खादेद्धरेत्स्त्रीणां जलोदरम् ।
चिंचाफलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ।
जलोदरहरं चैव कठिनेन रेचनेन तु ॥ ३३५ ॥

पारा, शीशेकी भस्म, नीलाथोथा, जमालगोटा, पीपल, अमलतासका गूदा ये सब समान ले थूहरके दूधमें मर्दन कर मासे मासेकी गोली बनावे ऊपरसे इमलीका रस पीवे और पथ्य दही और भातका लेवे यह रस स्त्रियोंके जलोदरको दूर करता है और तेज जुला-बसे जलोदर दूर होजाता है ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥

इत्युदरारिरसः ।

अथ जलोदरारिरसः ।

पिप्पलीमरिचं ताम्रं कांचनीचूर्णसंयुतम् ॥ ३३६ ॥
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्य तुल्यं जैपालबीजकम् ।
निष्कं खादेद्विरेकं स्यात्सद्यो हन्तिजलोदरम्३३७॥

रेचनानां च सर्वेषां दध्यन्नं स्तंभनं हितम् ।
दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूषकम् ॥ ३३८ ॥

पीपल, कालीमिरच, ताम्रभस्म, हलदीका चूर्ण ये सब लेकर थूहरके दूधमें एक दिन खरल करे फिर समान भाग जमालगोटा मिलाकर चार मासे खाय दस्त होवे और तत्काल जलोदर दूर होवे दही भातका भोजन दस्तोंके रोकनेके लिये हित है अथवा सायंका-लको मूंगका यूष देवे ॥ ३३६-३३८ ॥

इति जलोदरारि रसः ।

अथ नाराचरसः ।

सूतटंकणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् ।
गंधकं पिप्पली शुंठी द्वौ द्वौ भागौविचूर्णयेत् ॥३३९॥
सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजानि निस्तुषाणि च ।
द्विगुंजं रेचने सिद्धं नाराचोऽयं महारसः ।
गुल्मप्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तमुष्णवारिणा ॥ ३४० ॥

पारा, सुहागा, कालीमिरच, एक एक भाग, गंधक, पीपल सोंठ दो दो भाग सबको बारीक पीसले सबके बराबर छीले हुए जमालगोटाके बीज मिलादे दो रत्तीकी गोली देनेसे यह नाराचरस दस्त करानेवाला होवे यह गुल्म, प्लीहा और सब उदरविकारोंको दूर करता है ऊपरसे गरम जल पीवे ॥ ३३९ ॥ ३४० ॥

इति नाराचरसः ।

अथ इच्छाभेदीरसः ।

शुंठीमरिचसंयुक्तं रसगंधकटंकणम् ।
जैपालस्त्रिगुणः प्रोक्तः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ३४१ ॥
इच्छाभेदी द्विगुंजः स्यात्सितया सह दापयेत् ।

पिबेच्च चुळिकान्यावत्तावद्वारान्विरेचयेत् ॥३४२॥
तक्रौदनं प्रदातव्यमिच्छाभेदी यथेच्छया ।
दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः ।३४३।

सोंठ कालीमिरच, पारा, गंधक, सुहागा एक एक भाग जमालगोटा तीन भाग सबको मिला खरल करे और इसमेंसे दो रत्ती मिश्रीके साथ खाय ऊपरसे पानी पीवे॰ पानीके जितने चुल्लू पीवेगा उतनेही दस्त होंगे इच्छा अनुसार छाछ और भातका पथ्य देवे जो कदाचित् दोष प्रबल होजाय तो उनको लंघन कराके पचावे ॥ ३४१–३४३ ॥

अथ रसायनाधिकारः ।

प्रणम्य निर्भयं नाथं खेन्द्रदेवं जगत्पतिम् ।
दिगम्बरं त्रिनेत्रं च जरामृत्युविनाशनम् ॥ १ ॥
अमृतं च विषं चैव शिवेनोक्तं रसायनम् ।
अमृतं विधिसंयुक्तं विधिहीनं तु तद्विषम् ॥ २ ॥
रेचनान्त इदं सेव्यं सर्वदोषापनुत्तये ।
मृताभ्रं भक्षयेदादौ मासमेकं विचक्षणः ॥ ३ ॥
पश्चात्तु योजयेद्देहे क्षेत्रीकरणमिच्छतः ।
यत्क्षेत्रीकरणे सूतस्त्वमृतोऽपि विषं भवेत् ॥ ४ ॥
फलसिद्धिकृतस्तस्य सुबीजस्योपरे यथा ।
न क्षेत्रकरणादेवि किंचित्कुर्याद्रसायनम् ।
कर्त्तव्यं क्षेत्रकरणं सर्वस्मिंश्च रसायने ॥ ५ ॥

निर्भयकारी जगत्पति; दिगम्बर, त्रिनेत्र, जरामृत्युके दूर करनेवाला शिवजीको नमस्कार है, उन्होंने अमृत और विष कहे हैं

विधिपूर्वक देनेसे रसायन अमृत है विधिहीन होनेसे विष है रेचनके अन्तमें सम्पूर्ण दोषोंके दूर करनेके वास्ते इसका सेवन योग्य है प्रथम एक महीने तक अभ्रककी भस्मका सेवन करना चाहिये पीछे देहकी शुद्धिके अर्थ पारेका सेवन करे देहकी शुद्धिके विना पारा अमृत है वह विष होजाता है, विना क्षेत्रकी शुद्धिके फल सिद्ध होना कठिन है जैसे ऊपर जमीनमें बीज बोना, अतएव विना क्षेत्रीकरण कुछ रसायन न करे अतएव रसायनमें क्षेत्र करनाही उपयोगी है ॥ १–५ ॥

अथ गंधामृतरसायनम् ।

भस्मसूतं द्विधा गंधं क्षणं कन्याविमर्दितम् ।
रुध्वा लघुपुटे पच्यादुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥ ६ ॥
निष्कं खादेज्जरामृत्युं हन्ति गंधामृतो रसः ।
समूलं भृंगराजं तु छायाशुष्कं विचूर्णयेत् ॥ ७ ॥
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत् ।
पलैकं भक्षयेच्चात्तु तच्च मृत्युरुजापहम् ॥ ८ ॥

एक तोले पारेकी भस्म और दो तोले गंधकको ग्वारपाठेके रसमें थोडी देर खरल करे फिर शरावसंपुटमें लघुपुटमें फूंक देवे फिर इसको चार मासे घी और शहदके साथ खानेसे यह गंधामृत बुढापे और मौतको पास नहीं आने देता; जड सहित भांगरेको छायामें सुखाकर कूटले फिर उसके समान त्रिफलाका चूर्ण मिलावे और दोनोंके समान मिश्री मिलाकर रख छोडे पहिले चार मासे गंधामृत घी शहदके साथ खाकर ऊपरसे इसको फांकले ऐसा करनेसे मृत्यु-आदि रोग नाश होते हैं ॥ ६–८ ॥

इति गंधामृतरसायनम् ।

अथ हेमसुन्दररसः ।

मृतसूतस्य पादांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥

क्षीराज्यं मधुना युक्तं माषैकं कांस्यपात्रके।
लेहयेन्मासषट्कन्तु जरामृत्युविनाशनम् ॥ १० ॥
वाकुचीचूर्णकर्षैकं धात्रीरसपरिप्लुतम्।
अनुपानं लिहेन्नित्यं स्याद्रसो हेमसुन्दरः ॥ ११ ॥

पारेकी भस्म और उससे चौथाई सुवर्णकी भस्म मिलावे इसमेंसे एक मासेकी मात्रा छःमासे दूध घी और शहदके साथ कांसीके पात्रमें मिलाकर चाटे तो यह बुढापे और मौतको जीवे इसके ऊपर वाकुचीके चूर्णको आंवलेके रसमें सानकर पीवे यह हेमसुन्दर रस है ॥ ९–११ ॥

इति हेमसुन्दररसः।

अथ मृतसंजीवनी गुटिका।

शुद्धसूतं वंगभस्म सत्त्वमभ्रकरौप्ययोः।
कान्तलोहसमं हेम जम्बीरे मर्दयेद्दृढम् ॥ १२ ॥
सप्ताहं सर्वतुल्यांशं गोलं कृत्वा समुद्धरेत्।
गोजिह्वावायसीवन्ध्यानिर्गुडीमधुसैंधवैः ॥ १३ ॥
लेपयेद्वज्रमूषान्ते गोलकं तत्र निक्षिपेत्।
तत्कल्कैश्छादितं कृत्वा पक्षैकं भूधरे पचेत् ॥१४॥
यामं यामं समुद्धृत्य लिप्त्वा मूषां पुनः पुनः।
रुद्ध्वाथ पूर्ववत्पाच्यमेनं पक्षात्समुद्धरेत् ॥ १५ ॥
यवचिञ्चीपलाशाख्यराजीकपासतंडुलैः।
एतैः प्रलेपयेन्मूषां गुटिकां तत्र निक्षिपेत् ॥ १६ ॥
टंकणं श्वेतकाचञ्च दत्त्वा यामे दृढं दृढम्।
खादिरांगारयोगेन द्रुतोयं जायते रसः ॥ १७ ॥

१ जिह्वा इत्यपि पाठः।

मूषायां विड्योगेन समं हेम च जारयेत्।
ततस्त्रियामकं मर्द्यं सगोमूत्रं दिनैकतः ॥ १८ ॥
अन्धमूषागतो ध्मातो बद्धो भवति वज्रवत्।
मृतसंजीवनी नाम गुटिका वक्त्रमध्यगा ॥ १९ ॥
कर्षमात्रा जरां मृत्युं हन्ति सत्यं शिवोदितम्।
शस्त्रस्तम्भं च कुरुते ब्रह्मायुर्भवते नरः ॥ २० ॥

स्वच्छ पारा, हीरेकी भस्म, अभ्रक और चांदीका सत्त्व, कान्तिसार, लोह और समान सुवर्ण इन सबको जंभीरीके रसमें सात दिनतक खूब खरल करके गोला बनायले, गोभी, काकमाची, बांझककोडी, निर्गुंडी, शहद और सेंधानमक इन सबका वज्रमूषापर लेपन करदे बीचमें उस गोलेको रखदे और उसी लुगदीसे ढकदे फिर पन्द्रह दिनतक भूधरयन्त्रमें पकावे प्रतिदिन उसको निकालकर पहिलेकी तरह उन्हीं पूर्वोक्त द्रव्योंसे मूषाको लेप करके और मुख बन्द करके पन्द्रह दिनतक करता रहे फिर निकालकर जौ, चंचू, ढाक, राई, कपास और चावल इनसे मूषाको लेपन करे फिर सुहागा और काचका नमक डालकर दिनभर खरल करे और खैरकी लकडीकी आग देवे फिर मूषामें नमकके योगसे समान सुवर्णको जरावे फिर तीन पहर मर्दन करे फिर एक पहर गोमूत्रके साथ खरल करे और अन्धमूषामें रखकर अग्नि देनेसे वज्रके समान कहा जाता है इसका नाम मृतसंजीवनी गुटिका है इसकी एक कर्षकी मात्रा जरा मृत्युको हरती है शस्त्रका स्तंभन करती है आयु दीर्घ होजाती है ॥ १२–२० ॥

इति मृतसंजीवनी गुटिका।

अथ वीर्यरोधिनी गुटिका।

नागवल्लीदलद्रावैः सप्ताहं शुद्धसूतकम्।
मर्दयेत्क्षालयेदम्लैश्चतुर्निष्कप्रमाणकम् ॥ २१ ॥
विषकंदगतं कृत्वा विषेणैव निरोधयेत्।

ततः शूकरमांसस्य गर्भे कृत्वाथ सिंचयेत् ॥ २२ ॥
संध्याकाले बलिं दत्त्वा कुक्कुटीवारुणीयुतम् ।
ततश्चुल्ल्यां लोहपात्रे तैले धत्तूरसंयुते ॥ २३ ॥
क्षिप्त्वा त्रिशत्पले पाच्यं तद्रसं मांसपिंडकम् ।
संध्यामारभ्य मंदाग्नौ यावत्सूर्योदयं पचेत् ॥ २४ ॥
हठाज्जागरणं कुर्यादन्यथा तन्नसिद्धिभाक् ।
प्रातरुद्धृत्य गुटिकां क्षीरभांडे विनिक्षिपेत् ॥ २५ ॥
तत्क्षीरं शुष्यति क्षिप्रमेतत्प्रत्ययकारकम् ।
रतिकाले मुखे धार्या गुटिका वीर्यरोधिनी ॥ २६ ॥
क्षीरं पीत्वा रमेद्रामां कामाकुलकुलान्विताम् ।
स्वमुखाद्धारयेद्धस्ते तदा वीर्यं विमुञ्चति ॥ २७ ॥

नागर पानके रसमें शुद्ध पारेको सात दिनतक खरल करे फिर इसको चार निष्क इमलीके पानीसे धो डाले, गेलिया मीठेमें रखकर ऊपरसे उसीसे ढक दे फिर सूअरके मांसके बीचमें रखदे सायंकालमें कुक्कुटी और मदिराकी बलि देकर लोहेकी कढाईमें दो सेर तेल और धतूरा डालकर चूल्हेपर चढादे सन्ध्यासे सूर्योदयतक मन्दी मन्दी आगसे पकाता रहे कहीं ऐसा न हो कि आप सोजाय सोनेसे सिद्ध न होगा प्रातःकाल उठकर गुटकेको दूधके बर्तनमें डालदे वह दूध तत्काल सूख जायगा यही इसकी परीक्षा है. रतिसमय इसको मुखमें रखनेसे वीर्यको रोकता है दूध पीकर कामाकुल स्त्रियोंसे विषय करे मुखसे हाथमें निकालनेपर वीर्य स्खलित होगा ॥ २१–२७ ॥

इति वीर्यरोधिनी गुटिका ।

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां रसायनगुटिका
कथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अंजनविधिः ।

अथ संपक्वदोषस्य प्रोक्तमंजनमाचरेत् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ १ ॥
पूर्वाह्ने चापराह्ने च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ।
वर्षासु कुर्यादत्युष्णे वा वसन्ते सदैव हि ॥ २ ॥
श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ।
अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं संप्रशस्यते ॥ ३ ॥

दोषके पकनेपर अंजन कहा है हेमन्त और शिशिरमें मध्याह्नमें कहा है. ग्रीष्म और शरद्में दुपहर पहले और दुपहर पीछे, और वर्षामें जिस समय मध्य आवे और गरमी बहुत पडे और वसन्त ऋतुमें सदा हितकारक है थकावटमें, वमन होनेपर, डरमें धूमपानमें नवीनज्वरमें, अजीर्णमें, दस्त होनेमें अञ्जन न लगाना चाहिये ॥ १–३ ॥

वर्तिप्रमाणम् ।

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्ति तीक्ष्णांजने भिषक् ।
प्रमाणं मध्यमे सार्द्धं द्विगुणं च मृदौ भवेत् ॥ ४ ॥

मटरकी बराबर बत्ती तीक्ष्णांजनमें डेढकी बराबर, मध्यममें और मृदुमें दुगुणी बनावे ॥ ४ ॥

अन्यच्च ।

सूतकं गंधकोपेतं चांगेरीरससूर्च्छितम् ।
अंजनं दृष्टिदं नृणां नेत्रामयविनाशनम् ॥ ५ ॥

पारा और गंधक चांगेरीके रसमें खरल कर अंजन लगावे तो यह अंजन दृष्टि देनेवाला और नेत्रोंके सम्पूर्ण रोगोंको नाश करनेवाला होता है ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमंजनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमंजनं नयनामृतम् ॥ ६ ॥

पारा और शीसा बराबर २ तोले और उनसे दूना सुरमा डाले और थोडासा कपूर डाल दे यह अंजन नयनामृत तैयार होता है ॥ ६ ॥

अन्यच्च ।

कृष्णसर्पवसा शंखः कतकं कट्फलमंजनम् ।
रस एष मरीचेन अन्धानां दर्शनंपरम् ॥ ७ ॥

काले सांपकी चर्बी, शंख, निर्मिली, कायफल और अंजन इनको कालीमिरचके पानीमें खरलकर ले यह अंजन अंधोंको दृष्टि देनेवाला है ॥ ७ ॥

अन्यच्च ।

शंखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन पिप्पली ॥ ८ ॥
वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना ।
चिर्पिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण च पुष्पकम् ॥ ९ ॥

शंख चार भाग, मैनसिल दो भाग, कालीमिरच एक भाग और पीपल आधा भाग इनकी गोली बनावे पानीमें घिसकर लगानेसे धुन्धको दूर करती है तोडके साथ लगानेसे अर्बुदको शहदके साथ लगानेसे खुजलीको, स्त्रीके दूधके साथ लगानेसे फूलीको दूर करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अन्यः प्रकारः ।

अपामार्गशिखां घृष्ट्वा मधुना सैंधवेन च ।
ताम्रपात्रे कृता नेत्रे हन्ति पीडां सुविस्तराम् ।
दंतैर्दन्तिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ॥ १० ॥

शंखमुक्ताम्भोधिफेनयुतैःसर्वैर्विचूर्णयेत् ।
हन्ति वर्तिः कृता श्लक्ष्णं शुक्राणां नाशिनी परम् ११

ओंगाकी बालको शहद और सेंधेनमकके साथ घिसकर तांबेके बर्त्तनमें रखले नेत्रोंमें लगानेसे महापीडाको दूर करती है हाथी, सुअर, ऊंट, गौ, घोडा, बकरी और गधेके दांत शंख मोती समुद्रफेन इन सबको पीसले इनकी चिकनी बत्ती बनावे यह नेत्रोंके सब रोगोंको दूर करनेवाली है ॥ १० ॥ ११ ॥

अन्यः प्रकारः ।

तुत्थमाक्षिकसिन्धूत्थशिवाशंखमनःशिला ।
गैरिकोदकफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ १२ ॥
संयोज्य मधुना कुर्यादन्धानां सा रसक्रिया ।
वर्त्मरोगं च तिमिरं काचशुक्रहरं परम् ॥ १३ ॥

नीलाथोथा, सोनामक्खी, सेंधानमक, हरड, शंख, मैनसिल, गेरू, समुद्रफेन, कालीमिरच इन सबको शहदके साथ खरल कर नेत्रोंमें लगावे यह वर्त्मरोग धुन्ध फूली इत्यादिको नाश करती है॥१२-१३॥

चन्द्रोदया वर्ती ।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ।
पिप्पली मरिचं कुष्टं वचा चेति समांशकम् ॥१४ ॥
छागीक्षीरेण संपिष्ट्वा वर्ति कृत्वा यवोन्मिताम् ।
हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्याद्धांजनम् ॥ १५ ॥
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् ।
रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्प वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥१६॥

शंख बहेडेकी छाल, हरड, मैनसिल, पीपल, काली मिरच, कूठ, वच ये सब बराबर ले बकरीके दूधमें खरल कर जौकी बराबर बत्ती बनावे हरेणु (मटर) के समान गोली घिसकर आँखमें लगावे धुन्ध

रोहोंका पडना, काच, पटल, अर्बुद, रतोंध, फूली इन सबको यह चन्द्रोदयवर्ती दूर करती है ॥ १४-१६ ॥

इति चन्द्रोदया वर्ती ।

प्रत्यंजनम् ।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्यं शुद्धसूतं विनिक्षिपेत् ।
कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १७ ॥
दशमांशेन कर्पूरमस्मिंश्चूर्णे प्रदापयेत् ।
एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ ॥ १८ ॥

शुद्ध सीसेको पिघलाकर उसमें शुद्ध किया हुआ पारा डालदे दोनोंकी बराबर काला सुरमा डालकर कजली करले और दशवां हिस्सा कपूर डालदे यह प्रत्यंजन होता है नेत्रोंकी बीमारियोंको दूर करनेके हेतु नयनामृत है ॥ १७ ॥ १८ ॥

इति प्रत्यंजनम् ।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
जाता रोगाः प्रणश्यन्ति न भवंति कदाचन ॥१९॥
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ २० ॥

भोजन करके हथेलियोंको आपसमें घिसकर आंखोंमें लगावे तो उत्पन्न हुए नेत्ररोगोंको नाश करे और कभी रोग न होने पावे त्रिफलाके जलसे प्रातःकाल नेत्रोंको धोनेसे तत्काल धुंधादिक रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

अथातः केशरंजनं कथ्यते ।

त्रिफलालोहचूर्णं तु वारिणा पेषयेत्समम् ॥
द्वयोस्तुल्येन तैलेन पचेन्मृद्वग्निना क्षणम् ॥ २१ ॥

तैलतुल्य भृंगरसे तत्तैलं तु विपाचयेत् ।
स्निग्धभांडगतं भूमौ स्थितं मासात्समुद्धरेत् ॥२२॥
सप्ताहं लेपयेद्वेष्ट्य कदल्याश्च दलैः शिरः ।
निर्वाते क्षीरभोजी स्यात्क्षालयेत्त्रिफलाजलैः ॥२३॥
नित्यमेवं प्रकर्तव्यं सप्ताहं रंजनं भवेत् ।
यावज्जीवं न संदेहः कचाः स्युर्भ्रमरोपमाः ॥ २४ ॥

त्रिफला, लोहचूरा इन दोनोंको पानीमें पीस डाले दोनोंके बराबर तेल डालकर क्षणभर खरल करके तेलके बराबर भांगरेके रसमें तेलको पकाकर चिकनी हंडियांमें भरकर पृथ्वीमें गाडदे महीनेभर पीछे निकाललें इस तेलसे सात दिन तक लेप करे ऊपरसे केलेके पत्ते लपेटदे बिना हवाके मकानमें बैठकर त्रिफलाके जलसे धोवे दूधका भोजन करे ऐसे सात दिनतक करनेसे जीने पर्यन्त बाल भौंरेसदृश काले रहेंगे ॥ २१--२४ ॥

काकमाची यवा जाती समं कृष्णतिलं ततः ।
तत्तैलं ग्राहयेद्यंत्रे तेन स्यात्केशरंजनम् ॥ २५ ॥

काकमाची, जौ, चमेली और काले तिल इन सबका तेल यंत्र द्वारा निकालकर बालोंपर लगावे बाल काले होयँ ॥ २५ ॥

अन्यच्च ।

लौहमलामलकल्कः सजपाकुसुमैर्नरस्सदा स्नायी ।
पलितानीह निहन्याद्गंगास्नायीव नरकौघम् ॥२६॥

लोहकी कीटी, आंवले और जपाके फूल इनसे सदा स्नान करनेसे सफेद बाल ऐसे जाते रहते हैं जैसे गंगामें स्नान करनेसे पापसमूहोंका नाश होजाता है ॥ २६ ॥

अन्यच्च ।

काश्मर्य्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकीनां च मूलं

लौहं चूर्णं सभृंगं त्रिफलमलयुतं तैलमेभिर्विपक्वम् ।
कृत्वा वै लोहभांडे क्षितितलनिहितं मासमेकं निधाय
केशाःकाशप्रकाशा भ्रमरकुलनिभा लेपनादेवकृष्णाः२७

कुम्हेरनकी जड, पियावासेके फूल, केतकीकी जड, लोहचूर्ण भांगरा, त्रिफला, काजल तेल इन सबको लोहेके बर्तनमें भर पृथ्वीमें गाडदे महीनेभर पीछे निकाले और केशोंपर लगावे तो बाल लम्बे और तत्क्षण भौंरेसे काले होजाते हैं ॥ २७ ॥

शुक्लीकरणम् ।

वज्रीक्षीरेण सप्ताहं सुश्वेतान् भावयेत्तिलान् ।
तैलेन लिप्ताः केशाः स्युः शुक्ला वै नात्र संशयः २८

सेहुंडके दूधमें सफेद तिलोंको सात दिनतक भावना दे फिर तेल निकालकर बालोंपर लगावे तो बाल सफेद होजायँ ॥ २८ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां नेत्राञ्जनकेशरंजनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ वीर्यस्तम्भनम् ।

कर्पूरं टंकणं सूतं तुल्यं मुनिरसंमधु ।
मर्दयित्वा लिपेल्लिंगं स्थित्वा यामं तथैव च ॥ १ ॥
ततः प्रक्षालयेल्लिंगं रमेद्रामां यथोचिताम् ।
वीर्यस्तम्भकरं पुंसां सम्यङ्गागार्जुनोदिताम् ॥२॥

कपूर, सुहागा, पारा ये समान भागले अगस्तके रस और मधुमें मर्दन कर लिंगपर लेपन करे फिर उसी प्रकार पहरभर तक रहे तब लिंगको धोकर स्त्री संसर्ग करे तो वीर्यस्तंभ होय यह नागार्जुनका कहा हुआ है ॥ १ ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

कृकलासस्य पुच्छाग्रमुद्रिका प्रोततन्तुभिः ।
वेष्ट्या कनिष्ठिकाधार्या नरो वीर्यं न मुञ्चति ॥ ३ ॥

सरटकी पूंछका अग्रभाग लेकर तुनकोंसे गुंथकर अँगूठी बनाकर कनिष्ठ अंगुलीमें धारण करनेसे रतिकालमें वीर्य स्खलित नहीं होता है ॥ ३ ॥

अन्यच्च ।

मधुना पद्मबीजानि पिष्ट्वा नाभिं प्रलेपयेत् ।
यावत्तिष्ठत्यसौ लेपस्तावद्वीर्यं न मुंचति ॥ ४ ॥

कमलगट्टाकी मींगी शहदमें पीसकर नाभीपर लेप करले जबतक लेप रहेगा तबतक वीर्य स्खलित न होगा ॥ ४ ॥

अन्यः प्रकारः ।

चटकाण्डं तु संग्राह्य नवनीतेन पेषयेत् ।
तेन प्रलेपयेत्पादौ शुक्रस्तम्भः प्रजायते ।
यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं न मुञ्चति ॥ ५ ॥

चिडैयाके अंडोंको मक्खनमें पीसकर पांवोंके तलुओंपर लेप करनेसे स्तंभन होता है जबतक पृथ्वीको स्पर्श न करे तबतक स्खलित न होगा ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

वनक्रोडस्य दंष्ट्राग्रं दक्षिणं च समाहरेत् ।
कट्यामुपरि यद्बध्वा शुक्रस्तम्भः प्रजायते ॥ ६ ॥

वनसुअरकी दाहिनी डाढका अग्रभाग कमरमें बांधकर मैथुन करनेसे वीर्यस्तंभन होता है ॥ ६ ॥

अन्यः प्रकारः ।

डुंडुभो नामतः सर्पः कृष्णवर्णस्तमाहरेत् ॥ ७ ॥

तस्यास्थि धारयेत्कव्यां नरो वीर्य न मुञ्चति ।
विमुञ्चति विमुक्तेन सिद्धयोग उदाहृतः ॥ ८ ॥

काले कुंडुम नाग सांपकी हड्डीको कमरमें बांधनेसे वीर्यस्तंभन होय उसको खोलनेसे वीर्य स्खलित होय यह सिद्धयोग है ॥७॥८॥

अन्यच्च ।

रक्तापामार्गमूलं तु सोमवाराभिमंत्रितम् ।
भौमे प्रातः समुद्धृत्य कव्यां बद्धा न वीर्यमुक् ॥ ९॥

सोमवारको लाल ओंगाकी जडको न्यौते मंगलके दिन प्रातःकाल लाकर कमरमें बांधनेसे वीर्यस्तंभन होय ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

खसपलशुंठीक्काथः षोडशशेषोगुडेन निशि पीतः ।
कुरुते रतौ न पुंसो रेतःपतनं विनाम्लेन ॥ १० ॥

एक पल खस सोंठके काथमें सोलहवां हिस्सा गुड डालकर रतिके समय पीनेसे वीर्य स्खलित नहीं होता है, जब खटाई खाय तब वीर्य स्खलित होगा ॥ १० ॥

सूरणं तुलसीमूलं ताम्बूलेन तु भक्षयेत् ।
न मुञ्चति नरो वीर्यमेकैकेन न संशयः ॥ ११ ॥

जमीकन्द तुलसीकी जडको पानके संग खानेसे मनुष्य वीर्यको नहीं त्यागता है यह एक एकही बहुत गुणकारक हैं तीनों मिलाकर-तो बहुतही उपयोगी होते हैं ॥ ११ ॥

इति वीर्यस्तम्भनप्रकरणम् ।

अथ स्थूलीकरणम् ।

वराहवसया लिंगं मधुना सह लेपयेत् ।
स्थूलं दृढं च दीर्घं च पुंसो लिंगं प्रजायते ॥ १२ ॥

सुअरकी चर्बी शहदके संग लिङ्गपर लेप करनेसे मनुष्यका लिंग स्थूल दृढ और बडा होजाता है ॥ १२ ॥

अथ ध्वस्तकरणम् ।

क्षौद्रेण च समं घृष्टं पुण्डरीकस्य केशरम् ।
ध्वस्तं कुर्य्यात्ततो मेढ्रं रत्यन्यत्राप्यसंशयः ॥ १३ ॥

कमलकी केशर शहदमें घिसकर लिङ्गपर लगावे तो टेढा होजाय ॥ १३ ॥

अथ षंढत्वकरणम् ।

अनुराधासुनक्षत्रे लांगलीमूलिका ध्रुवम् ।
निखाता मैथुनस्थाने पुंस्त्वपंडत्वकारिणी ॥ १४ ॥
निशापट्टतिन्दुचूर्णेन भावितेनाजवारिणा ।
पानाशनप्रयुक्तेन पण्ढत्वं जायते नृणाम् ॥ १५ ॥

अनुराधा नक्षत्रमें कलिहारीकी जड लाकर मैथुनस्थानमें गाडदे तो पुरुषपन जाता रहे हलदी और तेन्दूके चूर्णको बकरेके मूत्रकी भावना देकर खाने पीनेसे मनुष्य नपुंसक होजाता है ॥ १४ ॥ १५॥

इति षंढत्वकरणम् ।

अथ पण्ढत्वनाशनम् ।

तिलगोक्षुरयोश्चूर्णं छागीदुग्धेन पाचितम् ।
शीतलं मधुना युक्तं भुक्तं षंढत्वनाशनम् ॥ १६ ॥

तिल, गोखरूको बकरीके दूधमें औटाकर शहद डालकर पीनेसे नपुंसकत्व दूर हो जाता है ॥ १६ ॥

अन्यच ।

ऊर्णनाभिस्तु यो जीवो मधुना सह लेपयेत् ।
तेन लेपप्रतो नाभिं वद्धषण्ढयं विमुच्यते ॥ १७ ॥

मकडीको शहदसे लपेट दे फिर उससे टूंढीको लेपन करे तो नपुंसकपना दूर हो जाता है ॥ १७ ॥

अथ स्त्रीद्रावणम् ।

एक एव महाद्रावी मालतीसम्भवो रसः ।
किं पुनर्यदि युज्येत मधुकर्पूरपारदैः ॥ १८ ॥

चमेलीका रस स्त्रीद्रावणके लिये बहुतही उपयोगी है इसमें शहद कपूर और पारा मिलानेसे बहुतही उपयोगी होजाताहै॥१८॥

अन्यः प्रकारः ।

आर्द्रकं गंधकं चैव राजिकं चाथ टंकणम् ।
संपेष्य सममात्राणि क्षेपयेन्निम्बुजे जले ॥ १९ ॥
स्थापयेद्घटिकास्तिस्रो हस्ते वै धारयेत्ततः ।
यावन्त्यो ललनाःपंच आजिघ्रन्तिद्रवन्तिवै ॥ २० ॥

अदरख, गंधक, राई और सुहागा ये सब समान लेकर पीस-डाले फिर नींबूके रसमें तीन घडीतक पडा रहनेदे फिर हाथपर धरले इ-सको जितनी स्त्रियां५चार सूंघे वे सब द्रवीभूत हो जाँय ॥ १९ ॥२०॥

इति स्त्रीद्रावणम् ।

अथ स्त्रीवशीकरणम् ।

मधुसैंधवसंयुक्तं पारावतमलान्वितम् ।
एतल्लिप्तेन्द्रियो रामां दासीवत्कुरुते रतौ ॥ २१ ॥

शहद, सेंधानमक, कबूतरकी बीठ ये तीन खरलकर लिंगपर लेप करनेसे स्त्री दासीके समान हो जाती है ॥ २१ ॥

अन्यच ।

कपीन्द्रियं शशी सूतं कुंकुमं कनकं मधु ।
एतल्लिप्तेन्द्रियो रामां दासीवत्कुरुते रतौ ॥ २२ ॥

कौंचके बीज, कपूर, पारा, केशर, धतूरा और शहद इन सबको पीसकर इन्द्रियपर लेपकरके मैथुन करनेसे स्त्री दासीके समान होजाती है ॥ २२ ॥

इति स्त्रीवशीकरणम् ।

अथ स्त्रीकर्षणम् ।

चूर्णिते मधुसंयुक्ते महारिष्टफलच्छदैः ।
लिंगलेपेन सुरते द्रवो भवति योषिताम् ॥ २३ ॥

शहद मिलाकर बकायनके पत्तोंसे लिंगपर लेपकरके स्त्री-समागम करनेसे स्त्री द्रवीभूत होती है ॥ २३ ॥

अन्यच ।

वृत्तमध्यस्थितं नाम तद्बाह्ये ह्रींचतुष्टयम् ।
तद्बहिः क्रौंचतुष्कं च लिखित्वा शिलयाखिलम्॥२४
शुभनक्षत्रसंयोगे स्थापितं मधुनि ध्रुवम् ।
स्त्रियमाकर्षति क्षिप्रं यन्त्रमेतन्न संशयः ॥ २५ ॥

एक वृत्त खींचकर बीचमें नाम लिखदे उसके बाहर चार ह्रीं लिखदे और उसके बाहर चार क्रौं लिखदे ये सब शुभ नक्षत्र-योगमें मैनसिलसे लिखकर शहदमें डालदे निश्चय उस स्त्रीका आक-र्षण शीघ्र होय ॥ २४ ॥ २५ ॥

वशीकरणम् ।

चन्दनं तगरं कुष्ठं प्रियंगुं नागकेशरम् ।
कृष्णां तिंतिडिकं चैव समभागानि कारयेत् ॥२६॥

दापयेच्चैव सप्ताहमात्मपञ्चमलेन तु।
स्नाने पाने प्रदातव्यं स्त्रियं वा पुरुषं तथा।
यावज्जीवेत्सदा दासी आत्मना च धनेन च ॥ २७॥
ॐ नमो भगवते उमामहेश्वराय ॐ नमो मोहिनीये मिलि मिलि सुभगे स्वाहा। अनेन सप्ताभिमंत्रितं कृत्वा नियोजयेत् वशीकरणं भवंति ॥

चन्दन, तगर, कूठ, प्रियंगु, नागकेशर, पीपल, तितिडीक ये सब बराबर लेकर अपने पांच मल अर्थात् नाक, कान, आंख, लिङ्ग और गुदाके मलके सातदिनतक जिस स्त्री पुरुषको दिया जाय वह अपनेसे और धनसे सदा दासवत् रहेगा "ॐ नमो भगवते उमामहेश्वराय, ॐ नमोमोहनीये मिलि मिलि सुभगे स्वाहा" यह मंत्र सात वार पढकर दे वश होजाय ॥ २६ ॥ २७ ॥

अन्यच्च।

शंखपुष्पी मधुपुष्पी तथा कुंचिकिपत्रिका।
श्वेतगिरिसमायुक्ता समभागानि कारयेत् ॥ २८ ॥
सप्ताहं दापयेद्युक्ता ह्यात्मपंचमलेन तु।
स्नाने पाने प्रदातव्यं वशीकरणमुत्तमम् ॥ २९ ॥
पूर्वोक्तमंत्रेण सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा दापयेत्।

शंखाहुली, महुआ और कुंचुकीके पत्र ये और सफेद कनेर समान लेकर सातदिन तक पूर्वोक्त पांच मलोंके साथ पूर्वोक्त मंत्र सातवार पढकर खाने पीनेमें देनेसे वशीकरण होता है ॥२८॥ २९॥

अथ भगसंकोचनम्।

प्रक्षालने भगे नित्यं कृते चामलवल्कलैः।
वृद्धापि कामिनी कामं बालेव कुरुते रतिम् ॥ ३०॥

आंवलेकी छालसे भगको नित्य धोनेसे वृद्धस्त्रीभी षोडशवर्षकी स्त्रीके समान रमण करती है ॥ ३० ॥

अथ लोमशातनम्।

हरितालचूर्णकालिकालेपात्तेनैव वारिणा सद्यः।
निपतन्ति केशनिचयाः कौतुकमिदमद्भुतं कुरुते ३१

हरिताल और चूना चूनेके पानीसे पीसकर लगानेसे बाल तत्काल झड पडते हैं ॥ ३१ ॥

अन्यच्च।

पलाशचिंचातिलमाषशंखं दहेदपामार्गसपिप्पलीपि।
मनःशिलातालकचूर्णलेपात्करोति निर्लोम शिरःक्षणेन ॥

पलाश, चिंचा, तिल, उडद, शंख, ओंगा, पीपल मैनशिल, हरिताल और चूना ये सब लगानेसे तत्काल बाल गिरपडते हैं ॥ ३२ ॥

अथ विद्वेषकरणम्।

गर्दभस्य रजो गृह्य लुठितं गात्रसंभवम्।
मृतकस्य तथा भस्म नारीरजःसमन्वितम् ॥ ३३ ॥
एकीकृत्य क्षिपेद्रात्रौ शय्यायामासनेपि वा।
नूनं संजायते द्वेषः कथितो मालतीमते ॥ ३४ ॥

जिस जगह गधा लोटाहो उस जगहकी धूल, मुरदेकी भस्म, और स्त्रीका रज तीनोंको मिलाकर रात्रिके समय जिस शय्या अथवा आसनपर सोते बैठते हों डाल देवे तो निश्चय दोनोंमें कलह होवे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अन्यच्च।

अन्ययोगवरं वक्ष्ये विद्वेषकरणं परम्।
युध्यमानावुभौ श्वानौ परस्परविरोधिनौ ॥ ३५ ॥

तयोर्धूलिं समादाय हन्यते योषितां रतिः ।
सत्यं भवति विद्वेषं नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥

एक और उमदा उपाय लडाई करानेका है. जहां दो कुत्ते आपसमें लडते होंय वहांकी धूल उठाकर स्त्री पुरुषोंको मारदे तौ उनमें निश्चय लडाई हो इसमें कुछ सन्देहका काम नहीं है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ स्तनदृढीकरणम् ।

सपद्मबीजं सितया भक्षितं पद्मवारिणा ।
दृढं स्त्रीणां स्तनद्वन्द्वं मासेन कुरुते भृशम् ॥ ३७ ॥

कमलगट्टाकी मींगी और मिश्री कमलके जलके साथ फांकनेसे एक महीनेमें स्त्रियोंके कुच करडे होजाते हैं ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

मुंडीचूर्णकषायेण युतं तैलं विपाचितम्
पतितं यौवनं यस्यास्तस्याः स्तनोन्नतिर्भवेत्॥ ३८॥

गोरखमुंडीके क्वाथको तेलमें पकाकर कुचोंपर लेप करनेसे नवीन स्त्रीके समान कुच कठोर होजाते हैं ॥ ३८ ॥

अथ वन्ध्याकरणम् ।

तण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तन्दुलवारिणा ।
ऋत्वन्ते त्र्यहपीतानि वन्ध्यां कुर्वन्ति योषितम् ३९॥

चौलाईकी जड चांवलके पानीके साथ पीसकर ऋतुके अन्तमें तीन दिन पीनेसे स्त्री बांझ होजाती है ॥ ३९ ॥

अन्यच्च ।

कांजिकेन जपापुष्पं पिष्ट्वा पिबति यांगना ।
ऋतौ त्र्यहं निपीतानि वन्ध्यां कुर्वन्ति योषितम् ४०

जो स्त्री कांजीके साथ जपाके फूल पीसे ऋतुकालमें तीन दिन पीवे सो वन्ध्या होय ॥ ४० ॥

अन्यच्च ।

धत्तूरं मल्लिकापुष्पं गृहीत्वा कटिसंस्थितम् ।
गर्भं निवारयत्येव रण्डावेश्यादियोषिताम् ॥ ४१ ॥

धतूरा और चमेलीके फूल जो कमरमें बांधे तो रंडा और वेश्यादिस्त्रियोंके गर्भका निवारण होजाता है ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

धूपिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठेन युक्तितः ।
ऋत्वन्ते रमते सा स्त्री गर्भदुःखविवर्जिता ॥ ४२ ॥

यत्नपूर्व ऋतुके अन्तमें नीमकी छालका योनिमें धुवां देवे और फिर उसके साथ रमण करे तो उसके गर्भ नहीं रहने पाता ॥ ४२ ॥

अथ वन्ध्यात्वनिवारणम् ।

नागकेशरपुष्पाणां चूर्णं गोसर्पिषा सह ।
सेवनाल्लभते पुत्रमृतौ दुग्धान्नभोजिनी ॥ ४३ ॥

नागकेशरके फूलको गौके घीके साथ सेवन करनेसे पुत्र होता है ऋतुकालमें दूधचावलका भोजन करे ॥ ४३ ॥

बीजानि मातुलिंगस्य दुग्धस्विन्नानि सर्पिषा ।
सगर्भामिति कुर्वन्ति पानाद्वन्ध्यामपि स्त्रियम्॥४४॥

दूधमें भीगेहुए बिजौरेके बीज घीके साथ खानेसे बांझस्त्रीभी गर्भवती होजाती है ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।

मातुलिंगस्य बीजानि कुमार्या सह पेषयेत् ।
क्षीरेण सह दातव्यं गर्भमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४५ ॥

बिजौरेके बीज ग्वारपाठेके साथ पीसकर दूधके साथ खानेसे स्त्री गर्भ धारण करती है ॥ ४५ ॥

अन्यत् ।

पिप्पलीं शृंगवेरं च मरिचं केसरं तथा ।
घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यागर्भप्रदं परम् ॥ ४६ ॥

पीपल, अदरख, कालीमिरच, केशर ये सब घीके साथ खानेसे बांझ स्त्री गर्भवती होवे ॥ ४६ ॥

अन्यत् ।

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं पिष्टं च कन्यका ।
ऋत्वन्ते घृतदुग्धाभ्यां पीत्वा प्राप्नोति संयुतम्॥४७॥

पुष्यनक्षत्रमें लाईहुई लक्ष्मणाकी जडको ग्वारपाठेके साथ पीसकर घी और दूधके साथ खीधर्मके अनन्तर पीनेसे स्त्री गर्भ धारण करती है ॥ ४७ ॥

अन्यत् ।

यासां पुष्पागमो नास्ति ऋतुकाले च योषिताम् ।
तासां कुर्याच्चिकित्सेयं पुनः पुष्पागमो भवेत्॥४८॥
पिप्पली च यवक्षारं विडंगा मन्मयं फलम् ।
शुभ्रं तु तुंबिनीबीजं गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ४९ ॥
मुंडी च क्षीरसंयुक्ता योनिद्वारेऽङ्गना शुभा ।
त्रिपञ्चसप्तरात्रेण पुष्पं भवति नान्यथा ॥ ५० ॥

ऋतुकालमें जिन स्त्रियोंको गर्भ नहीं होता है उनकी नीचे लिखी हुई चिकित्सा करनेसे फिर पुष्पागमन होता है पीपल, जवाखार, वायविडंग, मैनफल, और सफेद तुम्बीके बीज इन सबको पीसकर, गोली बनावे, गोरखमुण्डी और दूधके साथ योनिमें रखनेसे फिर तीन पांच या सात दिनमें पुष्पागमन होता है ॥ ४८-५० ॥

अन्यत् ।

अन्यद्योगवरं वक्ष्ये येन सा सफला भवेत् ।
उशीरमधुयष्टी च लोध्रमिन्द्रयवानपि ॥ ५१ ॥
घृतं सर्जरसं चैव माक्षिकं त्रायमाणकम् ।
शोभाञ्जनकमूलानि समभागानि कारयेत् ॥ ५२ ॥
पर्पयित्वा ततो द्रव्यमजाक्षीरेण पाचयेत् ।
सप्तरात्रं पिबेन्नारी यावत्तिष्ठति शोणितम् ॥ ५३ ॥
ततो योनौ विशुद्धायां पश्चाद्दद्यान्महौषधम् ।
कुमारीक्षीरसंयुक्तं नस्ये पाने प्रदापयेत् ।
तेन सा लभते पुत्रं सत्यं चैव सुरार्चितम् ॥ ५४ ॥

और बहुत अच्छा उपाय है खस, मुलहठी, लोध, इन्द्रजौ, घी, सर्जरस, सोनामक्खी, त्रायमाण और सहँजनेकी जड सब बराबर लेकर पीसले फिर बकरीके दूधके साथ जबतक स्त्री रुधिरयुक्त रहे सात दिनतक दे योनि शुद्ध होनेपर ग्वारपाठेके साथ सोंठको सुंघावे और पिवावे ऐसा करनेसे स्त्री पुत्रवती होय ॥ ५१-५४ ॥

अन्यत् ।

लशुनं क्षीरसंयुक्तं नस्ये पाने प्रदापयेत् ॥ ५५ ॥
अश्वगन्धाकृतं चूर्णमजाक्षीरेण दापयेत् ।
यवक्षारं विडंगं च गुडूची च सरेणुका ॥ ५६ ॥
सर्वाणि समभागानि कृत्वा च वरचूर्णितान् ।
एतत्पीत्वा लभेत्पुत्रं सा नारी नात्र संशयः ॥ ५७ ॥

दूधके संग लहसुनको सुंघानेमें और पीनेमें देवे, असगंधका चूर्ण बकरीके दूधके साथ देवे, जवाखार, वायविडंग, गिलोय, रेणुक इन सबको बराबर ले चूर्ण करके पीनेसे निश्चय स्त्रीके पुत्र होता है ॥ ५५-५७ ॥

अन्यत्।

हिंगुं च शतवीरा च दाडिमं सैन्धवं तथा ।
त्रिकटुः शतपुष्पा च नागपुष्पं शतावरी ॥ ५८ ॥
मधुकं सुमना चैव कार्षकाणि प्रदापयेत् ।
क्षीरेण सह दातव्या नार्याश्च पुरुषस्य च ॥ ५९ ॥
दिनत्रयं तु भुञ्जीत शालितन्दुलदुग्धया ।
भुक्तं तु लभते गर्भं नारीणां नात्र संशयः ॥ ६० ॥

हींग, शतवीरा, अनार, सेंधानमक, सोंठ, मिरच, पीपल, सोंफ, नागकेशर, शतावरी, महुआ, चमेली इन सबको एक २ कर्ष लेके दूधके साथ तीन दिन स्त्री पुरुष दोनोंको देवे ऊपरसे सांठी चावल और दूधका पथ्य लेवे तो स्त्री निश्चय गर्भवती होय ॥ ५८–६० ॥

अन्यत्।

अर्कमूलं प्रियंगु च कुसुम्भं नागकेशरम् ।
बला चातिबला छागीक्षीरं पीतं दिनत्रयम् ॥ ६१ ॥
विशोधयन्ति योनिं च ततो दद्यान्महौषधम् ॥
उत्पलं तगरं कुष्ठं यष्टी मधु सचन्दनम् ॥ ६२ ॥
अजाक्षीरेण पिष्टानि दापयेत्पञ्चवासरम् ।
लक्ष्मणा गोपयोयुक्ता नस्ये पाने प्रदापयेत् ।
तेन सा लभते पुत्रं लक्षणाढ्यं सुपंडितम् ॥ ६३ ॥

आककी जड, प्रियंगु, कसूँमा, नागकेशर, खरेटी और कघई इन सबको बकरीके दूधके साथ तीन दिन पीवे योनिके शुद्ध होनेपर सोंठ, नीलोफर, तगर, कूठ, मुलहटी, चन्दन पीसकर बकरीके दूधके साथ पांच दिन देवे और गौके दूधके साथ लक्ष्मणा देवे तो शुभ लक्षणोंसे युक्त और विद्वान् पुत्र होवे ॥ ६१–६३ ॥

गतरक्ते भगे शुद्धे सक्षीरा लक्ष्मणा तथा ॥ ६४ ॥
नस्ये पाने प्रदातव्या लभते सुतमंगना।
श्वेतार्कक्षुद्रणी श्वेता श्वेता च गिरिकर्णिका ॥ ६५ ॥
लक्ष्मणा वन्ध्यकर्कोटी देयं गोक्षीरसंयुतम् ।
नस्य पाने कृते गर्भं लभते रतिसंगमात् ॥ ६६ ॥

जब रुधिरसे योनि शुद्ध हो जाय तब दूध और लक्ष्मणा स्त्रीको नस्य और पानमें देनेसे पुत्र होता है. सफेद आक, कफेद, कटेरी, सफेद कनेर, लक्ष्मणा और बांझककोडीके दूधके साथ नस्य और पानमें देनेसे स्त्री गर्भवती होजावे ॥ ६४–६६ ॥

अथ गर्भस्तंभनम् ।

पतन्तं स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका ।
मधुच्छागीपयः पीत्वा किं वा श्वेताद्रिकर्णिका ॥ ६७ ॥
लज्जा शर्करा पाठा कन्दश्च मधुनान्वितः ॥
भक्षितो वारयत्येव पततं गर्भमंजसा ॥ ६८ ॥

गिरता हुआ गर्भ कुम्हारके हाथकी मिट्टी, शहद और बकरीका दूध पीनेसे रुकजाता है, अथवा सफेद कनेरकी केशर, मिश्री, पाठा, कन्द और शहद पीनेसे गर्भ रुकजाता है ॥ ६७–६८ ॥

समभागं सितायुक्तं शालितन्दुलचूर्णकम् ।
उदुम्बरशिफाकाथे पीतं गर्भं सुरक्षति ॥ ६९ ॥

सांठीचावल और मिश्री समान भाग लेवे और गूलरकी जटाके काथके साथ पिलानेसे गर्भ रुकता है ॥ ६९ ॥

अथ सुखप्रसवोपायः ।

मातुलुंगस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ७० ॥

तुषाम्बुपरिघृष्टेन कन्देन परिलेपयेत् ।
लांगल्याश्चरणौ सूतिं क्षिप्रमाप्नोति गर्भिणी ॥७१॥

बिजौरेकी जड, महुआ, शहद घीके साथ पीनेसे स्त्रीके बच्चा सुखसे होजाता है, कुम्हेरनकी जडको चावलोंके पानीमें पीसकर पावोंपर लेप करनेसे बच्चा सुखपूर्व होता है ॥७० ॥ ७१ ॥

अथ बालतन्त्रम् ।

बालतन्त्रं प्रवक्ष्यामि समासाद्रविणोदितम् ।
पूजाद्रव्यं दिशो भागं मन्त्रं तद्ग्राह्यलक्षणम् ॥७२॥
प्रथमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
मन्दा नाम्नी समाख्याता योगिनी तस्य लक्षणम् ७३
द्वितीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
सुनन्दा योगिनी नाम प्रथमं जायते ज्वरः ॥ ७४ ॥
संकोचो हस्तपादानामक्षिरोगोतिच्छर्दनम् ।
सभयत्वं कृशत्वं च तद्ग्रस्त इति लक्षणम् ॥ ७५ ॥
तृतीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
पूतना योगिनी नाम गात्रभङ्गो ज्वरोऽरुचिः ॥७६॥
प्रलापं कन्धराशोथच्छर्दिरित्यादिलक्षणम् ।
अपराह्ने च वारुण्यां पंचरात्रं बलिं क्षिपेत् ॥ ७७ ॥
चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
बिडाली नाम तद्ग्रस्ते चक्षुःशूलं ज्वरोऽरुचिः ७८॥
गात्रमोटनमित्यादि विवर्णेन बलिं क्षिपेत् ।
पंचमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ ७८ ॥
नर्तकीति समाख्याता योगिनी तस्य लक्षणम् ।

अथ षष्ठदिने वर्षे मासे गृह्णाति बालकम् ॥ ८० ॥
योगिनी शकुनी नाम कासश्वासोऽरुचिर्ज्वरः ।
हस्तपादादिसंकोचश्चक्षुःपीडेति लक्षणम् ।
पञ्चरात्र बलिं तस्यै वारुण्यां दिशि निक्षिपेत्॥८१॥

द्रावण कहके अब बालतन्त्र कहते हैं, पूजाद्रव्य दिशाओंके भाग और तद्ग्राह्यमन्त्र कहते हैं । प्रथम दिन, मास, वर्षमें मन्दा नाम योगिनी बालकको पकडती है दूसरे दिन, महीने, वर्षमें सुनन्दा नाम योगिनी ग्रहण करती है जिससे ज्वर, हाथपावोंमें भडकन, आंक्षिरोग और वमन होता है बालक डरता है कृश होता जाता है. तीसरे दिन, महीने, वर्षमें पूतना योगिनीके ग्रसनेसे ज्वर, अरुचि, प्रलाप, सूजन और छर्दी होती है, दुपहर पीछे वारुणीमें बलिदान करना उचित है चौथे दिनमें महीने, वर्षमें बिडाली नाम योगिनीके ग्रसनेसे आंखमें दर्द, ज्वर, अरुचि इत्यादि होते हैं बलि देना योग्य है। पांचवें दिन, महीने और वर्षमें नर्वकी योगिनीके ग्रहण करनेसे पीडा होती है. छठे दिन महीने वर्षमें शकुनी योगिनीके ग्रहण करनेसे श्वास, अरुचि ज्वर हाथ पांवोंमें भडकन, चक्षुपीडा होती है, वारुणी दिशामें पांच रात्रि बलिदान करना चाहिये ॥ ७२-८१ ॥

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे शुष्काशिवा शिशुम् ॥ ८२॥
गृह्णाति रोदनं कम्पो ज्वरशोषादिलक्षणम् ।
पश्चिमायां दिशि पञ्चबलौ दत्ते शिशुः सुखी ॥८३॥
अष्टमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति जंभिका ॥
तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं जायते ज्वरः ॥ ८४ ॥
शिरःपीडाक्षिरोगश्च चक्षुरुत्पाटचेष्टितम् ॥
दक्षिणां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत्॥ ८५॥

नवमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
अचिन्ता योगिनी नाम गात्रभंगः शिरोक्षिरुक्॥८६॥
छर्दिः प्रलाप इत्यादि तद्गृहीतस्य लक्षणम् ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् ॥ ८७॥
दशमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
नाम्ना कापालिका ख्याता योगिनी तस्य लक्षणम्॥८८
रोदनं कम्पनं छर्दिर्ज्वरो दुर्बलताक्षिरुक् ।
पूर्वां दिशं समाश्रित्य पंचरात्रं बलिं क्षिपेत् ॥८९ ॥
एकादशे दिने मासे वर्षे गृह्णाति लिप्सिता ।
गात्रकम्पो ज्वरस्तीव्रस्तद्गृहीतस्य लक्षणम् ॥ ९०॥
भानुसंख्ये दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
पीतली योगिनी नाम रोदनं वेदना ज्वरः ॥ ९१ ॥
निद्रा क्षीणस्वरः पीतो वमनाहारशून्यता ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य सप्तरात्रं बलिं क्षिपेत् ॥९२ ॥
कामसंख्ये दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
भद्रकाली ज्वरो निद्रा वामहस्तस्य कम्पनम्॥९३॥
वेदनारुचिनिःश्वासाः कायः पीतो विचेष्टितम् ।
पूर्वां दिशं समाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् ॥९४॥

सातवें दिन, महीने वर्ष शुष्काशिवा बालकको ग्रहण करती है जिससे रोदन, कम्पन, ज्वर और शोप होता है पश्चिमदिशामें पांच बलि देनेसे बच्चा प्रसन्न होजाता है आठवें दिन, महीने, वर्षमें बालकको जृम्भिका योगिनी ग्रहण करती है जिससे प्रथम ज्वर होता है फिर शिरमें दर्द, आँखरोग आँखोंकी उखडनेकीसी चेष्टा होती है इसकी पीडा नि-

वारणार्थ दक्षिण दिशामें बलि देना योग्य है, नववें दिन महीने वर्षमें अचिन्ता योगिनी बालकको ग्रहण करती है उससे गात्रभंग शिर और आँखमें दर्द, रोदन, कम्पन, छर्दि, ज्वर दुर्बलता होती है उत्तर दिशामें पांच रात्रितक बलि देना चाहिये, दशवें दिन महीने, वर्षमें कापालिका योगिनीके ग्रहण करनेसे रोदन, कम्पन, छर्दि, दुर्बलता, अक्षिरोग होते हैं. पूर्व दिशामें बलिदान करना चाहिये. ग्यारहवें दिन महीने, वर्षमें लिप्सिकायोगिनी बालकको ग्रहण करती है गात्रमें कम्पन तीव्र ज्वर ये उसके लक्षण हैं, बारहवें दिन, महीने वर्षमें पीतली योगिनीके ग्रहण करनेसे रोदन, वेदना, ज्वर, सुस्ती, झीनी बोली, पीला रंग, वमन भूख न लगना ये रोग होते हैं. उत्तर दिशामें सात दिनतक बलि देना चाहिये, तेरहवें दिन भद्रकालीके ग्रहण करनेसे ज्वर, निद्रा, बाँये हाथका कांपना, वेदना, अरुचि, निःश्वास, पीला रंग, चेष्टाका बिगडना होता है, उसकी शान्तिके वास्ते पूर्वदिशामें बलि देना चाहिये ॥ ८२-९४ ॥

पुरंदरदिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
तारा हि योगिनी नाम ज्वरः शोषोऽरुचिर्भृशम् ९५
चक्षुःपीडेंगितं तस्यै पश्चिमे बलिमाहरेत् ।
पक्षे च दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ ९६ ॥
योगिनी शर्वरी नाम श्वासः कासोऽरुचिर्ज्वरः ।
तद्ग्रस्ते चिह्नमित्यादि दक्षिणस्यां बलिं क्षिपेत्॥९७॥
विकारदिवसे मासे वर्षे गृह्णाति योगिनी ।
कुमारी नयनोद्वेगो ज्वरशोषादिचेष्टितम् ॥९८॥
नैर्ऋतीं दिशमाश्रित्य सप्तरात्रं बलिं क्षिपेत् ।
बालं च स्नापयेत्पश्चाच्छान्तितोयेन मंत्रवित्॥९९॥
नदीतीरद्वयाकृष्टमृदा देवीस्वरूपकम् ।
कृत्वा पूजा च कर्तव्या धूपपुष्पाक्षतादिभिः १००॥

वटका लड्डुकापूपा अग्रभक्तं गुडं दधि ।
चातुर्वर्ण्यपताकाश्च प्रदीप्ताः पुष्पचन्दनम् ॥१०१॥
पूजयेत्सर्वरोगाणामपराह्ने यथा बलिः ।
सर्वत्र नामभेदेन बलिदानं प्रजायते ॥ १०२ ॥
ओंनमो भगवति अमुके देवि बालं मुञ्च बलिं
गृहाण स्वाहा; सर्वत्र बलिनिवेदने मंत्रोऽयम् ।

इति श्रीशालिनाथवि० रसमं० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

चौदहवें दिन, मास, वर्षमें तारा योगिनी बालकको ग्रहण करती है जिससे ज्वर, शोष, अरुचि, चक्षुःपीडा होती है । पश्चिमदिशामें बलि देना चाहिये पन्द्रहवें दिन, महीने, वर्षमें शर्वरी योगिनी ग्रहण करती है जिससे श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर होता है दक्षिणदिशामें बलि देना चाहिये सोलहवें दिन, महीने वर्षमें कुमारी योगिनी ग्रहण करती है जिससे नेत्रोंका घूमना, ज्वर, शोष और विचेष्टा होती है, नैर्ऋतदिशामें सात दिनतक बलि देना चाहिये पीछे मंत्रसे बालकको स्नान करावे नदीके तीरपर मृत्तिकाकी देवी बनाकर धूप, पुष्प, अक्षतसे पूजन करे, बटक, लड्डू, मालपूआ, भात, गुड, दही भोग लगावे चार रंगोंकी पताका चढावे, दीपक जलावे पुष्प चंदन चढावे. यह सब पूजन दुपहर पीछे करे बलि चढावे नाम भेद करके बलि चढावे " ॐ नमो भगवति अमुके देवि बालं मुञ्च बलिं गृहाण स्वाहा" इस मंत्रसे बलि चढावे ॥ ९९–१०२ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां भाषाटीकासहितायां
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ कालविज्ञानम् ।

अथ कालस्य विज्ञानं प्रवक्ष्यामि यथासुखम् ।
जीवितं मरणं योगी यतो जानाति निश्चयात् ॥१॥
कालग्रहस्य यस्येदं दंष्ट्रासंपुटके जगत् ।

अद्यैव वा प्रभाते वा सोऽवश्यं भक्षयिष्यति ॥ २॥
रसं रसायनं योगं कालं ज्ञात्वा समाचरेत् ।
यस्माज्ज्ञानं विना व्यर्थं तत्तस्मात्प्रोच्यतेऽधुना॥३॥

अब मैं कालज्ञान कहता हूं जिससे जीवन मरणका वृत्तान्त योगीजन जान लेवें. यह सम्पूर्ण जगत् कालके डाढोंमें है आज वा कल वह अवश्य भक्षण करेगा, कालको जानकर रस रसायन और योग करना चाहिये उसके ज्ञानके विना सब व्यर्थ है अतएव कालज्ञान कहा जाता है ॥ १–३ ॥

दूतो रक्तकषायकृष्णवसनो दन्ती जरामर्दित-
स्तैलाभ्यक्तशरीरकायुधकरो दीनाश्रुपूर्णाननः ॥४॥
भस्माङ्गारकपालपांशुमुसलः सूर्यास्तसूर्योदये ।
यः सूर्यस्वरसंस्थितोगदवतांकालायसस्यादसौ ॥५॥

वैद्यके बुलानेको जो ऐसा मनुष्य जाय कि, जिसके वस्त्र लाल होय, गेरुआ होय, काले ऊँचे ऊँचे दांत होंय, बुड्ढा हो, शरीरमें तेल लगाहो, हाथमें शस्त्र हो, दीन हो, आँखोंमें आँसू हों, कपाल, भस्म लगरही हो पांशु और मूसल रखता हो, संध्या अथवा प्रातःकाल अथवा सूर्यअस्तका समय हो, जिसका सूर्यस्वर अर्थात् वैद्यके दहने स्वरकी तरफ खडा होवे तो वह रोगी मरजावे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अकस्माच्चित्तविक्रांतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ।
अकस्मादिन्द्रियोत्पत्तिः सान्निपातस्य लक्षणम् ॥६॥
शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् ।
तत्रारिष्टं समासेन व्याप्तं तत्र निबोध मे ॥ ७ ॥
दुष्टशब्देन रमते साधुशब्देन कुप्यति ।
यश्चाकस्मान्न शृणुते तं गतायुषमादिशेत् ॥ ८ ॥

अकस्मात जिस रोगीका चित्त बिगडजाय, अकस्मात् अच्छा होजाय, अकस्मात् इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होने लगे ये सन्निपातके लक्षण हैं. शरीर ठंडा होय, प्रकृति बिगडी हुई हो, उसका वर्णन करते हैं, जो बुरे शब्दसे प्रसन्न हो अच्छे शब्दसे क्रुद्ध होय, जो अकस्मात् बहरा होजाय उसको मराहुआ समझलो ॥ ६-८ ॥

यो वा गंधं न गृह्णाति दीपे शान्ते च मानवः ।
दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानि च पश्यति ॥ ९ ॥
चन्द्रं सूर्यप्रभं पश्येत्सूर्यं वा चन्द्रवर्चसम् ।
तडिद्वातोपितान्मेघान्निर्मले गगनेचरान् ॥ १० ॥
विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम् ।
यश्चानीलं मूर्तिमन्तमन्तरिक्षं च पश्यति ॥ ११ ॥
यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ।
संजातः संशयो यस्य तं वदन्ति गतायुषम् ॥ १२ ॥

जिसको दीपक बुझनेपर गंध न आवे, दिनमें तारे देखे चन्द्रमाको सूर्यके समान सूर्यको चन्द्रमाके समान देखे, निर्मल आकाशमें हवा और बिजलीके संग बादल देखे विमान, यान और महल देखे, जो अन्तरिक्षमें नीले रंगकी मूर्ति देखे जिसको गरम शीतल और शीतल गरम लगे जिसको सन्देह उत्पन्न होगया हो उसे मरा हुवा समझो ॥ ९-१२ ॥

विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ।
धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ १३ ॥
प्रदीप्तमिव लोकं च योऽवलुप्तमिवाम्भसा ।
भूमिमष्टादशाकारां लेखाभिर्यस्तु पश्यति ॥ १४ ॥
ज्योत्स्नादर्शे हि तोयेषु छायां यश्च न पश्यति ।
पश्यत्येकांगहीनां च वैकृतं चापि पश्यति ॥ १५ ॥

श्वकाककंकगृध्राणां प्रयातं यक्षरक्षसाम् ।
पिशाचोरगनागानां विकृतामपि यो नरः ॥ १६ ॥
ह्रीश्रियौ यस्य नश्येतां तेजओजःस्मृतिस्तथा ।
अकस्माज्जृम्भते यश्च स परासुरसंशयम् ॥ १७ ॥
यस्याधरोष्ठः पतति स्थितश्चोर्द्ध्वं तथोत्तरम् ।
पाशशंका भवेद्यस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १८ ॥

जिसको अनेक प्रकारकी चेष्टाभाव विपरीत मालूम हो जिसको पृथ्वी धुँआँ, कुहर, वस्त्रसे ढकीहुई मालूम हो, जो लोकको प्रदीप्त और पृथ्वीको जलसे ढकीहुई लेखाओंसे अठारह प्रकारकी देखे और जो चाँदनी दर्पण और जलसे अपना प्रतिबिंब न देखे. अंगहीन और बुरी सूरत देखे, जो कुत्ते, कौवे, चील्ह, गीध, यक्ष, राक्षस, पिशाच-सांप इनके भयंकर रूप देखे, जिसकी लज्जा, श्री तेज, ओज, धार, णाशक्ति जाती रहे, जो अकस्मात् जंभाई लेने लगे उसे मराहुआ समझो. जिसका नीचेका होठ नीचेको गिरे ऊपरका होठ ऊपर रहे जिसको फांसीकीसी शंका होय उस मनुष्यका जीना कठिनहै १३-१८

कुटिला स्फुटिता वापि सुप्ता यस्य च नासिका ।
अवस्फूर्यति मग्ना वा स परासुरसंशयम् ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यकी नासिका टेढी होगईहो, फटीसी हो, सुन्न पडगई हो, फडकतीहो अथवा बैठगई हो वह निश्चय मरजाता है ॥ १९ ॥

धारा बिन्दुसमा यस्य पतते च महीतले ।
सप्ताहाज्जायते मृत्युः कालज्ञानेन कथ्यते ॥ २० ॥

मेघके पानीके समान जिसके पसीने पृथ्वीपर टपकते हैं उसकी मृत्यु सात दिवसमें हो जाती है ॥ २० ॥

कर्णहीनं यदात्मानं पश्यत्यात्मा कथंचन ॥
न स जीवति लोकेऽस्मिन्कालेन कवलीकृतः ॥ २१ ॥

जो अपनेको कर्णहीन देखे वह संसारमें नहीं जीवेगा उसे तो मरा हुआही समझो ॥ २१ ॥

रात्रौ दाहो भवेद्यस्य दिवा शीतं च जायते ।
कफपूरितकंठस्य मृत्युश्चैव न संशयः ॥ २२ ॥

जिसके रात्रिमें दाह होय दिनमें शीतलता होय और कंठमें कफ भरा होय तो उसकी मृत्यु होनेमें संशय नहीं ॥ २२ ॥

चरणौ शीतलौ यस्य शीतलं नाभिमण्डलम् ।
शिरस्तापो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २३ ॥

जिसके पांव शीतल होय और नाभिके चारोंओरका मंडल शीतल होय और जिसके शिरमें ताप होय उसकी मृत्यु होनेमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसन्निभः ।
सदा दाहो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २४ ॥

जिसकी हुंकार शीतल होय और फूंक आगके समान होय और जिसके सदा दाह होय उसकी मृत्यु होनेमें सन्देह नहीं ॥२४॥

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
हीनायुषो न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥ २५ ॥

जो अरुन्धती, ध्रुव, विष्णुके तीन तारे, चौथा मातृमंडलके तारोंको न देखे उसकी आयु हीन समझो ॥ २५ ॥

अरश्मिबिंबं सूर्यस्य वह्नेश्चैवांशुवर्जितम् ।
दृष्ट्वैकादशमासांस्तु नरश्चोर्ध्वं न जीवति ॥ २६ ॥

जो सूर्यके मंडलको और अग्निको किरणरहित देखे वह मनुष्य ग्यारह माससे अधिक न जीवे ॥ २६ ॥

वातं मूत्रं पुरीषं यः सुवर्णं रजतं तथा।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासं न जीवति ॥ २७ ॥

वात, मूत्र, विष्ठा, सुवर्ण, चांदीको जो प्रत्यक्ष अथवा स्वप्नमें देखे सो दश महीने नहीं जीवेगा ॥ २७ ॥

कश्चित्पश्यति यो दीप्तं स्वर्णवत्काननं नरः।
विरूपाणि च भूतानि नवमासं न जीवति ॥ २८ ॥

जो मनुष्य सुवर्णके समान प्रदीप्त जंगल देखे अथवा प्राणियोंके विकराल रूप देखे वह नौ महीनेमें मरजाता है ॥ २८ ॥

स्थूलांगोऽपि कृशः कृशोपि सहसा स्थूलत्वमालम्बते
श्यामो वा कनकप्रभो यदि भवेद्गौरोपि कृष्णच्छविः।
धीरो धीरतयार्थधर्मनिपुणः शान्तोपकारी पुमा-
नित्येवं प्रकृते तु शान्तचलनं मास्यष्टमे मृत्युदम् २९

जो बहुत स्थूल मनुष्य अकस्मात् कृश होजाय और कृश मोटा होजाय, श्यामवर्ण मनुष्य गौर होजाय गौर काला होजाय और धैर्य-वान्‌की धीरज, यथार्थ धर्मवेत्ताका धर्म, शांत और उपकारी मनुष्यकी शांतप्रकृति जाती रहेतो ऐसा मनुष्य आठ महीनेमें मरजाताहै॥२९॥

पीडा भवेत्पाणितलेच जिह्वामूलं समूलं रुधिरं च कृष्णम्।
वृद्धिं नरःकामपि यत्र दृष्ट्वा जीवेन्मनुष्यःसहिसप्तमासान्॥

जिसकी हथेली और जीभकी जडमें पीडा होवे, जिसका रुधिर काला पडजाय, जिसको कोई वृद्धि न दीखे वह मनुष्य सात महीनेमें मरजाता है ॥ ३० ॥

मध्यांगुलीनांत्रितयं विरक्तं रोगं विनाशुष्यति यस्य कंठः।
मुहुर्मुहुः प्रस्रवणं च जाड्यं षष्ठे च मासे प्रलयं प्रयाति ३१

जिसकी बीचकी तीन अंगुलियोंकी रंगत फीकी पड गई हो रोगके विना जिसका कण्ठ सूखजाय बारंबार प्रस्रवण और जडता होय वह रोगी छठे महीनेमें मरजायगा ॥ ३१ ॥

यस्य न स्फुरणं किंचिद्विद्यते यस्य कर्मणि ।
सोऽवश्यं पंचमे मासि स्कंधारूढो गमिष्यति॥३२॥

जिसको किसी काममें कुछ स्फुरती न होय वह पांचवें महीने अवश्य मर जायगा ॥ ३२ ॥

यस्य न स्फुरते ज्योतिः पीडिते नयनद्वये ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ॥ ३३॥

जिसकी ज्योति न फडके, जिसके दोनों नयनोंमें पीडा होवे वह मनुष्य निश्चय चौथे महीनेमें मरजाता है ॥ ३३ ॥

स्पन्दते वृषणो यस्य न किंचिदपि पीडितः ।
तृतीये मासि सोऽवश्यं यमलोके गमिष्यति ॥३४॥

जिस मनुष्यके अण्डकोश किसी प्रकारकी पीडाके विना मटकते हों अथवा उनमें खुजली चलती हो वह मनुष्य निश्चय तीसरे महीनेमें यमलोकगामी होता है ॥ ३४ ॥

तारा दिवा चन्द्रप्रभं निशान्ते यो विद्युतं पश्यति चैव त्वभ्रे
इन्द्रायुधं वास्ययमेव रात्रौ मासद्वयं तस्य वदन्तिनाशम्॥

जिस मनुष्यको दिनमें तारे दीखे और चंद्रमाकीसी प्रभादीखने लगे, जो निर्मल आकाशमें बिजली देखे और रातमें इंद्रधनुष दीखनेलगे ऐसा मनुष्य दो महीनेमें मरजाता है ॥ ३५ ॥

यस्य जानुगतं मर्म न किंचिदपि चेष्टितम् ।
मासान्ते मरणं तस्य न केनापि विलंब्यते ॥ ३६ ॥
कनिष्ठांगुलिपर्व स्यात्कृष्णं च मध्यमं यदा ।
मतायुः प्रोच्यते पुंसामष्टादशदिनावधिः ॥ ३७ ॥

जिस मनुष्यके जानुगत मर्मको स्पर्श करनेसे कुछ चेष्टा न हो

वह महीनेभरमें अवश्य मर जाताहै, जिसकी कनिष्ठिका अंगुलीकेबीचका पोरुआ काला पडजाय वह मनुष्य १८दिनमें मर जाताहै॥३६॥३७॥

घृते तैले जले वापि दर्पणे यस्य दृश्यते ॥
शिरोरहितमात्मानं पक्षमेकं स जीवति ॥ ३८ ॥

घृत, तेल, जल अथवा दर्पणमें जो अपनी सूरत शिर विना देखे वह पन्द्रह दिनमें मर जाय ॥ ३८ ॥

शैत्यं दध्यन्नपानानि यस्य तापकराणि च ।
शीतरश्मि भवेच्चारुहासं चाथ सुनिर्मलम् ॥ ३९ ॥
न वात्ति वै चारु हितं न चोष्णं वेत्ति यो नरः ।
कालज्ञानेन संप्रोक्तं पक्षमेकं स जीवति ॥ ४० ॥

शीतल पदार्थ दही अन्न इत्यादि जिसको ताप करे जिसको चन्द्रमा और निर्मल हँसना बुरा मालूम होय जो हितकी बात और गरमी मालूम न करे वह पन्द्रह दिनमें मर जायगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥

स्नातमात्रस्य यस्यैते त्रयः शुष्यन्ति तत्क्षणात् ।
हृदयं हस्तपादौ च दशरात्रं स जीवति ॥ ४१ ॥

स्नान करनेसे जिसका हृदय, हाथ, पांव तीनों तत्क्षण सूख जायँ वह मनुष्य दश दिन जीवे ॥ ४१ ॥

नासाग्रं रसनाग्रं च चक्षुश्चैवौष्ठसंपुटम् ।
यो न पश्येत्पुरा दृष्टं सप्तरात्रं स जीवति ॥ ४२ ॥

नाककी नोंक जीभकी नोंक आंख और होंठ जिसको न दीखें वह सात दिनमें मर जावे ॥ ४२ ॥

स्वरूपं परनेत्रेषु पुत्तिकां यो न पश्यति ।
यदा हि पटुदृष्टिश्च तदा मृत्युरदूरतः ॥ ४३ ॥

औरके नेत्रोंके पुतलीमें अपने स्वरूपको न देखे और जिसको पहले नहीं दीखता था फिर दीखने लगे वह शीघ्र मरेगा ॥ ४३ ॥

इति कालविज्ञानम् ।

अथ छायापुरुषलक्षणम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥ ४४ ॥
कालो दूरस्थितोऽप्यापि येनोपायेन लक्ष्यते ।
तं वदन्ति समासेन यथोद्दिष्टं शिवागमे ॥ ४५ ॥
एकान्ते विजने गत्वा कृत्वादित्यं स्वपृष्ठतः ।
संनिरीक्ष्य निजच्छायां कण्ठदेशसमाहिताम् ।
ततश्चाकाशमीक्षेत ततः पश्यति शंकरम् ॥ ४६ ॥

अब छायापुरुषके लक्षण कहता हूं-जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्य त्रिकालका जाननेवाला हो जाता है, जिस उपायसे दूरस्थ काल भी देखनेमें आता है उसको मैं संक्षेपसे जैसा शिवागममें उद्देश है वैसा कहता हूं निर्जन एकांतमें जाकर सूर्यकी ओर पीठ करके खडा होवे और अपने कंठकी छायाको देखे फिर जप करनेके पश्चात् आकाशकी ओर देखे तब शंकरका दर्शन होवे ॥ ४४-४६ ॥

" ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः "

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततो वै दृश्यते शुभम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ॥ ४७ ॥
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ।
वर्षद्वयेन हे नाथ कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः॥ ४८ ॥
त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ।
यत्कृताभ्यासयोगेन नास्ति किंचित्सुदुर्लभम् ४९॥
तद्रूपं कृष्णवर्णं च पश्यति व्योम्नि निर्मले ।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥५०॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः" इस मंत्रको एक सौ आठ बार जप करके जब आकाशकी ओर देखेगा तब शुद्ध स्फटिकके समान गौरवर्ण श्रीशङ्करका दर्शन होगा. इस प्रकार छः महीने अभ्यास करनेसे चराचर प्राणीमात्रका पति होजायगा और दो वर्षपर्यंत अभ्यास करनेसे वह योगी स्वयं शिवके समान कर्ता हर्ता और त्रिकालज्ञ होजाता है इस अभ्यासके योगसे उसको संसारमें कुछभी दुर्लभ नहीं रहता यदि वही रूप निर्मल आकाशमें कृष्णवर्ण दीखे तो वह योगी निस्संदेह छः महीनेमें मरजाता है ॥ ४७-५० ॥

पीतो व्याधिभयं रक्तो नीलो हत्या विनिर्दिशेत् ।
नानावर्णे स्वरूपेस्मिन्नुद्वेगो जायते महान् ॥५१॥
पादौ गुल्फं च जठरं विनाशः कृशता भवेत् ।
अर्द्धवर्षेण वर्षे वा जीवन्वर्षद्वयेन वा ॥ ५२ ॥
विनाशो दक्षिणे बाहौ स्वबन्धुर्म्रियते ध्रुवम् ।
वामबाहौ तथा भार्या विनश्यति न संशयः ॥ ५३॥
शिरोदक्षिणबाहुभ्यां विनाशो मृत्युमादिशेत् ।
आशिरो मासमरणं विना जंघे दिवा नव ॥ ५४ ॥
अष्टाभिः स्कन्धनाशेन छायालुप्तेन तत्क्षणात्॥५५॥

जो पूर्वोक्तरूप पीतवर्ण दीखे तो व्याधिका भय है लाल और नीला हो तो हत्याका द्योतक है जो इस स्वरूपमें अनेक प्रकारके वर्ण दीखें तो महान् उद्वेग होता है जो चरण, टकने और जठरका नाश होवे और कृशता होय तो छः महीने एक वर्ष अथवा दो वर्षमें मर जाताहै. दाहिनी भुजाके नष्ट होनेसे अपने बांधवका मरण होता है. बांई भुजाके नष्ट होनेसे स्त्रीमरण, शिर और दाहिनी भुजाके नष्ट होनेसे मृत्युकी सूचना होती है शिररहित एक महीनेमें, बिना जांघ नौ दिनमें कंधे रहित आठ दिनमें और छायाके लुप्त होनेसे तत्क्षण मरजाता है ॥ ५१-५५ ॥

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन वा ।
जपेन ज्ञानयोगेन जायते कालबन्धनम् ॥ ५६ ॥
रसायनं च पूर्वोक्तं गुटिका मृतजीवनी ।
नरैः सेव्या यथोक्तं च परं कालस्य वंचनम् ॥ ५७ ॥
रक्षणीयमतो देहं यतो धर्मादिसाधनम् ।
शरीरं नाशयन्त्यते दोषा धातुमलाश्रयाः ॥ ५८ ॥
वैद्यनाथतनूजेन शालिनाथेन धीमता ।
शास्त्रमालोक्य चाकृष्य रचिता रसमञ्जरी ॥५९॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमञ्जर्यां
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

तीर्थस्नान, दान, तप, सुकृत, जप, ज्ञानयोगसे कालका बंधन होता है, पूर्वोक्त रसायन मृतसंजीवनी गुटिका आदि कालके निवारणार्थ मनुष्योंको सेवन करना उचित है, धातु और मलके आश्रयभूत दोष शरीरको नष्ट कर देते हैं इससे इस शरीरकी रक्षा करना उचित है क्योंकि यही शरीर धर्मका साधनेवाला है इसी हेतुसे वैद्यनाथके पुत्र शालिनाथने शास्त्रोंको देखकर और उनका सार खींचकर यह " रसमंजरी " बनाई है ॥ ५६–५९ ॥

इति श्रीमथुरानिवासिकृष्णलालनिर्मितरसमंजरी भा०टी०द०ऽध्यायः१०
इति रसमंजरी भाषाटीकासहिता सम्पूर्णतामगमत् ।

परिशिष्टम् ।

बहुमूत्रहरोऽर्कः ।

चक्रमर्दकमूलं तु संपिष्टं तंडुलाम्बुना ।
प्रभातसमये पीतस्तदर्को बहुमूत्रहृत् ॥ १ ॥

चकवडकी जडको चावलके पानीमें पीसकर अर्क तैयार करले यह अर्क प्रातःकाल पीनेसे बहुमूत्र रोगका नाश करता है ॥ १ ॥

गर्भकारकः ।

अश्वगन्धाभवार्केण सिद्धं दुग्धं सितान्वितम् ।
ऋतुस्नाताङ्गना प्रातः पीत्वा गर्भं दधाति हि॥२ ॥

असगन्धके अर्कको दूधमें डालकर सिद्ध करे पीछे मिश्री डालकर ऋतुधर्मके अनन्तर स्नान करके प्रातःकाल जो स्त्री पीती है वह निश्चय गर्भधारण करती है ॥ २ ॥

अथ वाजीकरणम् ।

स्वर्णमाक्षिकलोहं च पारदश्च शिलाजतु ।
पथ्याविडंगधत्तूरविजयाजातिपत्रिका ॥ ३ ॥
अश्वगन्धागोक्षुराणामर्कैर्भाव्यं पृथक्पृथक् ।
सप्तभागं तु विश्वैकं मध्वाज्याभ्यां लिहेत्ततः ॥ ४ ॥
गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् ।
गोधूमचूर्णं तु तथा सितामधुघृतान्वितम् ॥ ५॥
भुक्त्वा हि व्यक्तिजीर्णोऽपि दशदारान्व्रजत्यपि ।
ब्रह्मचर्यं प्रकर्तव्यमेकविंशद्दिनावधि ॥ ६ ॥

सोनामक्खी, लोह, पारा और शिलाजीत, हरड, वायविडंग धतूरा, भांग, जावित्री इनको असगन्ध और गोखरूके अर्ककी एक एक भावना देवे, इसमेंसे सात भाग सोंठ और एक भाग घी और शहदके संग चाटे ऊपरसे ऐसी गायका दूध लेवे कि जिसका बच्चा बडा होगया हो उस दूधमें सूजी भूनकर डालदे अर्थात् खीर या महेरी, बनाकर खाय इक्कीस दिवसतक ब्रह्मचर्यसे रहे तो मनुष्य कैसाही जीर्ण होगया हो दश स्त्रियोंसे भोग करसकता है ॥ ३–६ ॥

अथ प्रदरहरः ।

सितादुग्धेन संयुक्तमाभार्कस्य पलद्वयम् ।
घृतदुग्धाशनी नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ ७ ॥

प्रदर रोगवाली स्त्री प्रातःकाल दो पल बबूलका अर्क मिश्री मिलेहुए दूधमें डालकर पीवे, घृत मिलाकर दूधका सेवन करे तो प्रदररोग नष्ट होजायगा ॥ ७ ॥

अन्यच्च ।

अशोकवल्कलार्कश्च घृतं दुग्धं च शीतलम् ।
यथावच्च पिवेत्प्रातः स्त्रीणां प्रदरशान्तये ॥ ८ ॥

अशोककी छालका अर्क पीवे फिर ऊपरसे यथावत् घी और कच्चा दूध पीवे तो प्रदररोग दूर होवे ॥ ८ ॥

अथ प्लीहहरः ।

समुद्रशाकिजो ह्यर्कः पिप्पल्यर्कः सदुग्धकः ।
अर्कार्को वासलवणः प्लीहरोगविनाशनः ॥ ९ ॥

समुद्रफेनका अर्क पीपलका अर्क दूधमें मिलाकर पीनेसे अथवा नमक डालकर आकका अर्क पीनेसे तिल्ली दूर होजाती है ॥ ९ ॥

अथाश्मरीहरः ।

कूष्माण्डार्को यवक्षारहिंगुयुक्तश्चाश्मरीप्रणुत् ॥ १० ॥

कूष्मांडका अर्क, जवाखार, हींग डालकर पीनेसे पथरीरोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

इति श्रीरसमंजर्या भाषाटीकान्वितः परिशिष्टभागः समाप्तः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी-मुंबई.

END